बन्दनवार

श्री सम्पूरणदास सक्सेना

नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

मुद्रक
एजूकेशनल प्रेस
बीकानेर

क्रम

मूल्य १

प्रकाशक
नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

मुद्रक
एजुकेशनल प्रेस
बीकानेर

क्रम

बन्दनवार

(कहानी संग्रह)

मातेश्वरी

सबेर लालमहार्द गई बाग में नूह उठाय। उसमें एक कली खिली थी। शाम का झोंका आया और उसकी महक को चुरा ले गया। दूसरे दिन वह अनमनी होकर धूल में पड़ी थी।

रंगमहल में रहनेवाली विलासिनी ने उसे देखा और फिर अपनी पसन्द भी की। वह झिलमिलकर पैंड हुए गए। कामनाएँ मसल गईं—प्रेम सजीव हो गया। महल से निकलकर वह कुटी की छाया में रहने लगी।

कौन—विलासिनी?

नहीं वही जगन्माता!

[दो]

"उसकी सम्पत्ति कुबेर का खजाना थी, कुटी में रहकर गया सब क्या किए होगा?" पथिक ने पूछा।

'नहीं वह अभागी थी। कठिन दुर्भिक्ष में लुट गई—अगणित कोटि-मानवों की उदर-ज्वाला में भस्म हो गई'—पुजारी ने उत्तर दिया।

"दुर्भिक्ष में ?"

"हां रही-सही महामारी में।

"अब ?

"दानों को मसती और अन्न के लिए तरसती होगी।'

[तीन]

पुजारी ने पूछा—"देख लिया ?"

"हां पर वह जगह न थी है। कहीं पवित्र स्थान में चलकर बढ़ें। —पथिक ने कहा।

पुजारी ने मन्दिर का द्वार खोल दिया। पथिक ने सहमकर आंखें बन्द कर लीं।

'क्यों, चलोगे नहीं ?

"नरक में प्रवेश से भय लगता है। यह क्या मन्दिर है ? पुजारी, पागल तो नहीं हो गये हो ?"

'मूढ़ क्या कहता है ? देख सामने ठाकुरजी विराजते हैं।"

"तुम्हारी आंखों की कमजोरी पर मुझे तरस आता है। मैं तुम्हें यथाशक्ति उधर जाने से रोकूंगा।

'अभागा भस्म हो जायगा।"

पथिक ने आकाश की ओर देखकर आंखों को मूंद लिया और कहा—"आओ अब तुम देखोगे।"

[चार]

मध्याह्न के इस गाँवों में पथिक आगे-आगे था और पुजारी पीछे । सामने सड़क पर एक बालक हैजे से पीड़ित पड़ा था । विलासिनी ने अपनी गोद में उसका लथपथ शरीर रख लिया था । पुजारी ने कहा— "आगे चलो !"

एक घर में सात प्राणी थे । दो लड़के, तीन लड़कियाँ स्त्री और पुरुष । पुरुष मर चुका था । स्त्री-पुत्र और दो लड़कियाँ मरणासन्न —शेष भूख-प्यास से बेचैन । पुजारी का हृदय पसीज गया पर वे थे अछूत । विलासिनी वहाँ भी आ गई । पुजारी ने पथिक की ओर देखा । वह निर्विकार था ।

मुड़ घुमाते ही सामने कई चिताएं लपटें ले रही थीं । एक युवक संसार की समस्त करुणा को हृदय से लगाकर बिलख रहा था । पुजारी की आँखें सजल हो गईं । उस युवक का सारा परिवार उसे अकेला छोड़ गया था । पुजारी ने सोचा—उसका कोई नहीं है । क्योंकि वह असहाय था। विलासिनी वहाँ भी आ गई । उसने युवक पर अञ्चल की छाया करके कहा— 'क्यों रोते हो ?"

कहाँ—गईं मेरी माँ !"

'आओ, मेरी गोद में !"

"हा, पिता !"

"यह मैं हूँ ।

"प्यारी तारा !"

'इधर देखो।"

पुजारी वहीं अपना माथा पकड़कर बैठ गया। पथिक ने सावधान कर कहा—अरे यह तो अपवित्र श्मशान है!

[पाँच]

'कहाँ हो—पुजारी!

"दिव्य लोक में।"

यह क्या है?"

'चिरन्तन ज्योति।

"ऊपर स्वर्ग की वीणा कौन बजा रहा है?'

मातेश्वरी।

मत कहना मिमामिमी तो नहीं!

"अजी, जगन्मिका के लिये, यह क्या कहते हो!

"—और यह द्वारपाल!

'ओह! यही ठाकुरजी तो हैं।"

[छः]

पुजारी मन्दिर से चलते चलते रुक गया और कहा—"यहाँ कहाँ!

"क्यों?"

'उस कुटी में थे न?"

"और अब ?

'यहीं तो—अब यहाँ कैसे आ गये ?"

"मन्दिर या कुटी में तो मैं नहीं रहता ।

'तो ?

'मैं रहता हूँ प्रेम और सौहार्द में—आप तुम कहाँ थे ?"

'नहीं कहा आप द्वारपाल बने थे ।

'नहीं, वह मान का अब आवश्यकता नहीं ।

पुजारी ने माथा चरणों में झुका लिया और सजल आँखों को पोंछकर देखा, चाँदनी का अमृत भरा किरण । पुजारी के रुग्ण आँखों और मरणोन्मुख वृद्ध के कंकाल का मान ही साथ फूल रहा था । उसने झटपट मन्दिर से निकलकर रोते हुए अन्त्यज को गले लगाकर सान्त्वना दी । पुजारी पवित्र और मन्दिर क्षीर-सागर हो गया ।

'वह यदि मैं होती'

आँख में दवा डलवाने अस्पताल गया था। वहीं रोगियों के एक कमरे के सामने मेरे कान में एक अद्भुत व्यथा-भरे स्वर में ये शब्द पड़े— वह यदि मैं होती!—फिर सब शांत हो गया। मालूम पड़ा किसी ने या तो कहनेवाले के ओठों पर हाथ रखकर आवाज़ को बंद कर दिया, या उसकी अन्तिम श्वास सहसा शून्य में विलीन हो गई।

अस्पताल से लौटने पर वह हल्की-धीमी आवाज़ एक हज़ार मनों का बोझ बनकर मुझे दबाने लगी। सुखमय निश्चिन्त जीवन में एक अप्रत्याशित चिन्ता का जन्म जी को बड़ा कष्टकर मालूम पड़ा।

जीवन की तमाम विकट और दुखदायी परिस्थितियों से निकल चुका था। चिन्ता के वे अहर्याम कष्टों के बीत चुके थे। भाग्य का सितारा जगमगा रहा था। समाज में मान प्रतिष्ठा साधारणों में विद्या-बुद्धि का आतंक पूरी तरह जम चुका था। मेरे चरित्र में लोगों के लिए 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का सामञ्जस्य स्थापित हो चुका था।

गाँव में अपनी सोलह ग्रामों की ज़मींदारी थी। इस समय से घर की शोभा अनन्त गुनी हो गई थी जिस पर भी मैं था एकच्छत्र राज। अपने आसामियों के लिए मैं गौरव की वस्तु था। दूर दूर तक गाँवों में

मेरी योग्यता की धाक थी। वहाँ ऐसा पढ़ा लिखा मला था ही कौन वमींदार !

इन सब बातों के अलावा मेरे कोमल और उदार स्वभाव ने और भी मेरे लिये लोक-प्रियता का संचय कर रक्खा था। मैंने रियाया के लिये कई सुविधाएं कर दी थीं। यहां तक कि सरकारी अफसर मेरे साम्यवादी होने का संदेह करने लगे थे। वे सब मेरी उपेक्षा करने लगे थे; पर मैंने कभी उनसे मान पाने की उत्कण्ठा नहीं की। इसीसे मैं अपने लोगों का बहुत प्यारा था। जिस दिन मेरी पुश्तैनी बन्दूक जब्त करली गई थी, उस दिन मैंने भी अपने आपको बहुत कुछ बन्धनमुक्त समझ लिया था। मेरे असामियों ने तो एकमत होकर मुझे बधाइयां दी थीं और कहा था—आप इस सरकारी मान से दूर ही रहें तो अच्छा। मैं सबका इतना प्रिय था कि एक बार मेरे भूल कर डालने पर भी किसी को कानों-कान खबर न होती।

घर में मेरी सुन्दरी स्त्री थी और थी चहकती हुई मैना-सी एक नन्ही सुकुमार बालिका। गत छः मास से मेरी स्त्री दूसरे बच्चे की मा होने वाली थी। सभी विशेषज्ञों ने इस बार एक मत होकर पुत्र के पूर्व लक्षण निश्चित कर दिये थे। मेरी श्रीमती तो कष्ट होते हुये भी इस समाचार से खिली फुलझड़ी की तरह प्रफुल्ल दिखाई पड़ती थीं। मैं आनन्दातिरेक से खिल रहा था। आह ! कैसा सौभाग्यशाली था मैं !

पर मैं आराम और सुख था। घर के बाहर कीर्ति और स्नेह। जीवन स्वतन्त्र आनन्द और मंगलमय था। मैं कभी भूलकर भी किसी वेदना-पूर्ण जीवन की कल्पना नहीं कर सकता था पर क्या कहूं उसने

अस्पताल से लौटा हूँ तबसे शायद कुछ अभाव भी हो गई है। हृदय उमड़ कर कुछ कह आने लगा है। एक अज्ञात अन्तर्वेदना से हृदय और विचारों में [illegible] आन्दोलन खड़ा हो गया है। यद्यपि अभी तक उस बात का कोई स्पष्ट आधार ध्यान में नहीं आया था।

मैं परेशान था, यह अनन्त चिन्ता और व्यथा किस प्रकार दूर की जावे। उस दिन मित्रमण्डली का पहला पहरा मेरा ही था [illegible] चार भी। कुछ सुहाता न था [illegible] गया था। [illegible] का मन्द मधुर मुस्कान का रस फीका सा लगा। [illegible] जबरदस्ती आसन जमाकर अपने खिलौनों की गुड्डा-गुड़िया [illegible] पर आज उनके मनमुग्धकर वात्सल्य से मुझे शान्ति न मिली। चिन्ता और अशान्ति के [illegible] मेरा [illegible] तो हम पूछने लगे। [illegible] नहीं [illegible] घबराए नहीं [illegible] ऐसा खास नहीं—आकर सिर-दर्द का बहाना करके आत्मा को छिपाकर अपने कमरे में लेट गया।

जब तक जागता रहा एक आंतरिक व्याकुलता से भी व्यथित रहा। अनेक तरह की करुण सुन्दर कल्पनाएं मन में उठती रहीं। पर अन्त तक मैं यह न समझ सका कि मेरा मानसिक विकार किस अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण उठ खड़ा हुआ है। दुनिया में नित्य नई सुन्दर मार्मिक सहस्रों घटनाएं हुआ करती हैं, पर किसी का प्रभाव तो इस प्रकार हृदय में एक गहरी लकीर नहीं खींच जाता। उस शय्या में क्या था! क्यों मेरा हृदय [illegible] हृदयस्थान को आतुर हो रहा है! क्यों शरीर का रोम रोम एक [illegible] वेदना के साथ एक प्राण हो जाना

अस्पताल से लौटा हूँ तबसे हालत कुछ अजीब ही हो गई है। हृदय उमड़ कर मुँह को आने लगा है। एक अज्ञात अन्तर्वेदना से हृदय और विचारों में तूफानी आन्दोलन खड़ा हो गया है। यद्यपि अभी तक उस वाणी का कोई स्पष्ट आकार ध्यान में नहीं आया था।

मैं परेशान था यह अनमनापन [illegible] और व्यथा किस प्रकार दूर की जावे। उस दिन मित्रमण्डली की चहल पहल में छुट्टी का मजा [illegible] थी। कुछ सुहाता न था। खाना [illegible]। स्त्री की मन्द-मधुर मुसकान का रस फीका सा लगा। [illegible] आकर अपने [illegible] गुदगुदिया [illegible]। पर आज उसके मनोमुग्धकारी बालचापल्य से मुझे शान्ति न मिली। वेदना, चिन्ता और अशान्ति के [illegible] पहाड़ के कारण मेरा तो दम घुटने लगा। खाना नहीं खाया [illegible] ऐसा खाना नहीं—आकर सिर-दर्द का बहाना करके [illegible] अपने कमरे में लेट गया।

अब तक जागता रहा एक आन्तरिक व्याकुलता से भी घबराता रहा। अनेक तरह की ऊल-जुलूल कल्पनाएँ मन में उठती रहीं। पर अन्त तक मैं यह न समझ पाया कि सारा मानसिक विकार किस अविच्छिन्न सम्बन्ध के कारण उठ खड़ा हुआ है। दुनिया में नित्य नई दुःखद मार्मिक घटनाएँ घटा करती हैं, पर किसी का प्रभाव तो इस प्रकार हृदय में [illegible] गहरी लकीर नहीं खींच जाता। उन शब्दों में क्या था? क्यों मेरा हृदय एकान्त [illegible] हृदयमंथन को आतुर हो रहा है? क्यों उसका [illegible] एक विशेष करुणा के साथ [illegible] हो जाता

धुंधली एक सुधि थी जिसकी गहरी रेखा समय के व्यवधान से मिटने पर आ गई थी। जब मैं अपने पूर्ण वेग से उसके लिए पश्चात्ताप के आँसू बहाने जा रहा था कि अकस्मात् कमरे के द्वार खुलने से मेरी निद्रा भंग हो गई।

मेरी श्रीमती ने भीतर आकर मुझे बताया कि आज शाम को उसकी मृत्यु अस्पताल में हो गई। आप पूछेंगे किसकी ?—मेरी स्त्री ने तो उसका नाम मुझे बताया था पर मैं किस तरह बताऊँ ? जिसे मैंने हृदय से, मन से और विचार से निर्वासन दिया था जिसके सारे सामीप्य को मैंने अपरिसीम दूरी में परिणत कर दिया था। जिसे अशुभ स्वप्न की भाँति, विषाक्त रोगों के कीटाणुओं की भाँति, निष्ठुरता से अस्वीकृत मान लिया था, आज उसका नाम कैसे लूँ ?

किन्तु आज नौ बरस बाद उसके मरने का समाचार सुनकर मैं तुरन्त उसके घर की ओर चल पड़ा। अपने यहाँ किसी ने नहीं जाना कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। जिसे स्मृति-मन्दिर से बहिष्कृत कर दिया था, उस घर की मध्य प्राचीरों के भीतर पहुँचा तो वहाँ चञ्चल हिलते हुए वृक्षों का साया न किसी आदमी का निशान था न जीवन का स्पन्दन। उसके घर की हालत कङ्काल शेष वृद्ध की तरह शीर्ण हो गई थी। जिस घर में एक बार परीक्षा पास हो जाने के बाद मैंने उसकी भोली गृहस्वामिनी की आशाओं की सपनीली मृगमरीचिका निहारी थी वहाँ आज श्मशान की शान्ति छा रही थी। मेरी आँखों से आँसुओं की गंगा बह चली। वहीं खड़े खड़े मैंने एक बार वे सब बातें याद कीं।

एक समय था मेरे पास मोटरसाइकिल थी। उसी के धक्के से बलराम गिरकर बेहोश गया था। उस समय मेरी उमंगों का सारा विकास छिन्न-भिन्न हो गया था और जब डाक्टर ने आकर उसकी अंतिम घड़ियों की सूचना दे दी थी तब तो भयंकर संकट का अनुमान लगाना कठिन था। उस समय परिवार और प्रतिष्ठा किसी की सहायता से काम निकलनेवाला नहीं था पर स्वयं बलराम ने उस समय मुझे नया जीवन दे दिया था। उसने एक कागज पर अपने कंपित और मरणासन्न हाथों से डाक्टर की उपस्थिति में लिख दिया था—"मैंने स्वयं आत्महत्या करली है। विधवा माता और क्षुद्र बहन के ऊपर अपनी पढ़ाई का बोझ डालकर उनके कष्टमय जीवन को और दुखमय बनाने से उसका न रहना ही अच्छा होगा।"

उस प्रशंसनीय दान पत्र को लेते समय मेरी अन्तरात्मा लज्जा से नत हुई जा रही थी। मैंने भी एक साहसी युवक की तरह उससे प्रार्थना की थी कि वह मुझे कोई सेवा का भार दे जाय। बड़े अनुनय-अनुराग के बाद उस महान उदारात्मा बलराम ने अपनी छोटी-बहन सावित्री के जीवन की देख-रेख का उत्तरदायित्व इन निकम्मे कन्धों पर रख दिया था। हाय! मेरी वह आडम्बरपूर्ण वीरता! हाय मानवीय प्रवञ्चना!—पर उस समय मैं अपनी अयोग्यता का विचार न कर सका था।

बालिका सावित्री और उसकी सरला मां ने मेरी बातों का विश्वास कर लिया था। उस समय तो मुझे भी यही जान पड़ता था कि संवेदना-मिश्रित स्नेह ही परम पवित्र वस्तु है। कर्तव्य के साथ जब निष्ठा के साथ

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना जानता है और मुरझाना भी। शेफालिनी हँसना जानती थी, रोना नहीं। मुसकान ही उसके अधरों पर खेली थी। आँसू ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृंगार करता है; माया ने उसके मन को सुरभित किया था। कौमुदी कुमुदिनी की शोभा निखारती है, सरल भोलेपन ने उसके हृदय को प्रफुल्ल किया था।

उसका शरीर कुसुम की तरह नहीं, हलकी बदली की तरह था। उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं, सुरमई संध्या की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं, शबलजाल की तरह था। उसकी उंगलियों में कलियों का सौकुमार्य और सौंदर्य नहीं, कचीरे की पटुता थी। उसकी आँखों में कटाक्ष का विलास नहीं, थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता। उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं, मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम संगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कविता की तरह नहीं, धर्म-शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं, मानवी थी। उसका शरीर नहीं, मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रक्खा था। उस

तरह, जैसे माधवी लता अपने फूलों का हार माली को उतार देती है । उसने अपने मन के मन्दिर में वसन्त की मूर्ति चित्रित कर रक्खी थी । वह उसकी आँखों का बन्दी था और उसके निराले शैशव और सरल भोलेपन का दास ।

शेफालिनी के माँ नहीं विमाता भी न थी । था केवल एक पिता । पिता के आँगन को उसके दूसरे बहन या भाई ने कभी अपनी हँसी से आलोकित नहीं किया था । वही उस घर की अकेली दीप-शिखा थी । नीम और आम की छाया से आच्छादित और बगीचे से घिरा हुआ उसके पिता का घर महर्षि कण्व का क्षुद्र आश्रम था । शेफालिनी शकुन्तला थी । मृग-छौना उसने पाल रक्खा था । लताओं को उसने सींच सींचकर बड़ा रक्खा था । कभी उसके एक सखी भी थी । उसका नाम था मालिनी । बड़ी हितैषिणी, बड़ी प्यारी और बड़ी स्नेहशीला । बचपन की उसकी वह सखी एक मधुर स्मृति छोड़कर अपने भाई के साथ चली चली गई थी । बरसों के परदे ने उस स्मृति पट को झीना कर दिया था । उन दिनों वसन्त ही उसके मनोजगत का सुधांशु था ।

[दो]

उसका विवाह कहाँ हुआ था । नौ साल की लड़की के सामने ग्यारह साल की उम्र का लड़का कहाँ जँचता है ? तिस पर वसन्त नववधू की तरह लजीला, कुमुदिनी की तरह संकोचशील कपोत की तरह भोला और सरोज की तरह सुकुमार था । उसके स्नेह में मृदुलता थी स्वभाव में

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना जानता है और मुरझाना भी। सुवासिनी हंसना जानती थी, रोना नहीं। मुसकान ही उसके अधरों पर खेली थी। आंसू ने उसके कपोल का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृङ्गार करता है; आशा ने उसके मन को सुरभित किया था। कौमुदी कुमुदनी की शोभा निखारती है; सरल भोलेपन ने उसके हृदय को प्रफुल्ल किया था।

उसका शरीर कुसुम की तरह नहीं, हलकी बदली की तरह था। उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं सुरमई संध्या की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं शैवालजाल की तरह था। उसकी उंगलियों में कलियों का सौकुमार्य और सौंदर्य नहीं कलीपे की मृदुता थी। उसकी आंखों में कटाक्ष का विलास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता। उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम-संगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कवित्व की तरह नहीं धर्म शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं मानवी थी। उसका शरीर नहीं मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रखा था। उसी

तरह, जैसे माधवी लता अपने फूलों का हार माली को उतार देती है । उसने अपने मन के मन्दिर में बसन्त की मूर्ति चित्रित कर रक्खी थी । वह उसकी आँखों का बन्दी था और उसके निराले शैशव और सरल भोलेपन का दास ।

शैवालिनी के माँ नहीं विमाता भी न थी । था केवल एक पिता । पिता के आंगन को उसके दूसरे बहन या भाई ने कभी अपनी हँसी से आलोकित नहीं किया था । वही उस घर की अकेली दीप शिखा थी । नीम और आम की छाया से आच्छादित और बगीचे से घिरा हुआ उसके पिता का घर महर्षि कण्व का छोटा आश्रम था । शैवालिनी शकुन्तला थी । मृग-छौना उसने पाल रक्खा था । लताओं को उसने सींच-सींचकर बड़ा रक्खा था । कभी उसके एक सखी भी थी । उसका नाम था मालिनी । बड़ी विनोदिनी, बड़ी प्यारी और बड़ी स्नेहशीला । बचपन की उसकी वह सखी एक मधुर स्मृति छोड़कर अपने भाई के साथ कहीं चली गई थी । बरसों के परदे ने उस स्मृति-पट को झीना कर दिया था । उन दिनों बसन्त ही उसके मनोजगत का सुधांशु था ।

[दो]

उसका विवाह नहीं हुआ था । नौ साल की लड़की के सामने ग्यारह साल की उम्र का लड़का कहाँ बँधता है ! तिस पर बसन्त मधुप की तरह सजीला, कुमुदिनी की तरह संकोचशील, कपास की तरह भोला और सरोज की तरह सुकुमार था । उसके स्नेह में मृदुलता थी, स्वभाव में

विवाहिता कुमारी

फूल खिलना जानता है और मुरझाना भी। यामिनी हँसना जानती थी, रोना नहीं। मुसकान ही उसके अधरों पर खेलती थी। आँसू ने उसके कपोलों का स्पर्श नहीं कर पाया था।

वसन्त कली का शृङ्गार करता है, आशा ने उसके मन को सुरभित किया था। कौमुदी कुमुदनी की शोभा निखारती है; सरल भोलेपन ने उसके हृदय को प्रफुल्ल किया था।

उसका शरीर कुन्दन की तरह नहीं, हलकी बदली की तरह था। उसका मुख चन्द्र की तरह नहीं सुरमई संध्या की तरह था। उसका केश-विन्यास कुसुम-गुम्फित नहीं शवालजाल की तरह था। उसकी उंगलियों में कलियों का सौकुमार्य और सौंदर्य नहीं कसीदे की पटुता थी। उसकी आँखों में कटाक्ष का विलास नहीं थी सरल चितवन की स्निग्ध रमणीयता। उसका कंठ कोकिल की तरह नहीं मयूरी की तरह था। उसका गान प्रेम-संगीत की तरह नहीं, प्रार्थना की तरह था। वह कल्पना और कवित्व की तरह नहीं धर्म-शास्त्र की तरह थी। वह देवी नहीं मानवी थी। उसका शरीर नहीं मन सुन्दर था।

उसने अपना हृदय अपने प्रेमी वसन्त को दे रखा था। उस

[तीन]

बसन्त को सम्राट् बनने की धुन थी। शैवाल के पिता महमत थे। शैवाल राजरानी होगी भाई! उसके गौरव का क्या ठिकाना? आदमी के मन के प्रतिबिम्बन के लिए विधाता का यह विश्व भी क्षुद्र है। नारी का त्याग और पुरुष की कामना दोनों ही निस्सीम हैं। एक की सार्थकता पहले में, तो दूसरे की अन्तिम में ही है।

एक दिन शैवाल के पिता ने अनेक आशीर्वचनों के साथ उसे, बसन्त को विदा कर दिया। शैवाल को दोनों ने समझाया—उसका जाना बहुत थोड़े समय के लिये है इतने थोड़े समय के लिये जितने में कोई बालिका विस्मृतस्वप्ना से पागल नहीं हो सकती।

चलते-चलते बसन्त ने एकान्त में गलबाहीं देकर उससे कहा—तुम डरो नहीं विवाह से पहले हम दोनों मिल जायेंगे।

शैवाल तो विवाह की कुछ आवश्यकता ही न समझती थी पर उन दिनों उसकी चर्चा इस ओर से चल रही थी कि उसे भी ध्यान हो गया जैसे वह तिथि अब बहुत दूर नहीं है। वह यहीं कहीं आने के लिये तैयार बैठी है। बहुत सँभव है नदी में उस पार पड़ी हुई डोंगी पर चढ़कर वह कल ही किसी समय आकर द्वार खटखटाने लगे।

इतने थोड़े समय में वह आकर युद्ध कर आयेगा जिससे हम लोगों का जीवन सुन्दरमय हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। वह चला जाय। मैं कभी उसके मार्ग की दीवार नहीं बनूँगी।

आदमी थी और व्यवहार में सौजन्य। उसके गुण शैवालिनी को भाते थे। उसके पिता को पसन्द थे। अतः विवाह न होने पर भी वाग्दान हो चुका था। शैवाल ने तो उससे भी पहले वसन्त को अपना समझ लिया था।

कैसी सुन्दर समझ थी और कैसी अनुपम धारणा। एक दिन शैवाल के चुने हुए फूलों की माला पहनकर वसन्त ने एक गाना गाया। कैसा सुन्दर था वह गान। कैसी मधुर थी वह स्वर-वीणा। लेकिन उसका भाव अच्छा नहीं था शैवाल के कानों को खटकता था। उसमें महत्वाकांक्षा की ध्वनि थी। पद की कामना थी और ख्याति का भाव।

शैवाल उदास हो गई। जूही की लता का पुष्प-गुच्छ उसके गुलाबी कपोलों का स्पर्श करता हुआ कब से झूल रहा था। उसे तोड़ कर उसने बखेर दिया। मनमौजी भौंरा फूलों की दो एक पंखुरियाँ मुँह में लेकर उसे प्यार करने आया था उसे भी उसने मना कर दिया। वसन्त यह भाव-परिवर्तन समझकर बोला—शैवाल तुम्हारा यह ढंग ठीक नहीं है। देखो भाग्य की रेखाएँ। मुझे सम्राट् का मुकुट धारण करना है।

शैवाल ने रूठकर कहा—हो जाओ बड़ा न।

वसन्त—और तुम्हें मेरी रानी बनना है।

शैवाल—भाग्य में है तो यहाँ भी सम्राट् बन जाओगे न होगा मैं यहीं पिता से कहकर तुम्हें एक सुन्दर मुकुट बनवा दूँगी। उसे पहनकर यहीं पहाड़ियों पर घूमना हरियाली पर शासन करना। मैं ऐसी ही रानी बनना चाहती हूँ।

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। बात वहीं रह गई।

[तीन]

वसन्त का सम्राट् बनने की धुन थी। शैवाल के पिता सहमत थे। शैवाल राजरानी होगी आज! उसके गौरव का क्या ठिकाना? आदमी के मन के अतिक्रमण के लिए विश्व का यह विस्तार भी क्षुद्र है। नारी का त्याग और पुरुष की कामना दोनों ही निस्सीम हैं। एक की सार्थकता पहले में, तो दूसरे की अन्तिम में ही है।

एक दिन शैवाल के पिता ने अनेक आशीर्वचनों के साथ उसे, वसन्त को विदा कर दिया। शैवाल की चेतना ने समझाया—उसका जाना बहुत थोड़े समय के लिये है, इतने थोड़े समय के लिये जितने में कोई बालिका मिलनाकांक्षा से पागल नहीं हो सकती।

चलते-चलते वसन्त ने एकान्त में गलबाँही देकर उससे कहा—तुम रोओ नहीं, विवाह से पहले हम दोनों मिल जायँगे।

शैवाल को विवाह की कुछ आवश्यकता ही न मालूम होती थी पर उन दिनों उसकी चर्चा इस ओर से चल रही थी कि उसे भी ख्याल हो गया कि यह तिथि अब बहुत दूर नहीं है। वह यहीं कहीं आने के लिये तैयार बैठी है। बहुत सम्भव है नदी के उस पार पड़ी हुई डोंगी पर चढ़कर वह कल ही किसी समय आकर द्वार खटखटाने लगे।

इतने थोड़े समय में वह आकर युद्ध कर आवेगा जिससे हम लोगों का जीवन सुखमय हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। वह चला जाय। मैं कभी उसके मार्ग की दीवार नहीं बनूँगी।

मुहूर्त पूछकर वह जाने लगा तो शैवाल ने हँसी-खुशी उसे विदा दी। केवल विदा होते समय आँखों के कोने ओस से फूल की तरह भीग गये थे। हर्षोल्लास के साथ रोने का यह सामान बड़ा ही विचित्र था।

[चार]

उसकी प्रतिज्ञा को लेकर कई पत्र आये, पर उसके दर्शन का मंगल-मुहूर्त कहीं मार्ग में ही भटक गया। उसके आने में इतनी देर लगी कि कली का एक-एक अरमान हवा के झोंके साथ उड़ गया। शैवाल, प्रेम पुत्तलिका शैवाल की उम्र अपना रास्ता तय करती हुई आगे बढ़ने लगी।

समाचार मिला, वह अगले सप्ताह आवेगा। उस महीने में तो वह अवश्य ही चल देगा। अमुक तिथि के प्रातःकाल की प्रथम किरण के साथ उसके प्रयाण करने का मुहूर्त है। वह निश्चित समय पर अपने स्थान से प्रस्थान कर चुका है। मार्ग में उसके स्वागत को घास की चादर बिछा रखी है। आकाश ने इन्द्र-धनुष की लहरोंवाले बादल के वस्त्र पहन लिये हैं। दिशाओं ने दक्षिण-पवन की साड़ी से अपने को सजा कर रखा है। पहाड़ियों ने फूलों की आँखें खोलकर उसके स्वागतार्थ अपूर्व वन्दनवारें सजा रखी हैं। वह आज नहीं तो कल और कल नहीं परसों उदित रवि के साथ-साथ अवश्य ही शैवाल के द्वार पर पहुँच जायगा।

शैवाल ने भी जुही और चमेली, गुलाब और मौलसिरी, बेला और शिवाली के फूलों की मालाएँ गूँथ-गूँथकर रेशमी पुरट पट से ढक रखी थीं। हृदय के मुलायम स्थलों में कितने अरमान बचा कर रखे थे।

हाथ। पर सब कुछ धरा रह गया। सुना गया कि वह आकर भी लौट गया। कोई बहुत आवश्यक काम था। इतना आवश्यक कि जिसके समक्ष शैवाल का मूल्य कुछ भी न था। शैवाल रो पड़ी। अपने हृदय को दबा लिया। अपनी दुर्भाग्य का क्या करे? किन्तु नहीं उनका जाना ही ठीक है जिससे उनके मन की आकांक्षाएं पूर्ण हो जायं। उन्हें मुकुट मिल जाय। राजमुकुट उनके ललाट पर सुशोभित हो। मेरा भी तो ललाट तब सूना नहीं रहेगा।

फिर सुनने में आया—महाराज ने उन्हें गोद ले लिया है। महाराज मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। शीघ्र ही अब वे महाराज के पद पर अभिषिक्त होंगे। शैवाल व्यग्र हो उठी, वह सोचने लगी—अब मैं लड़कपन की पगली नहीं हूं जो उन्हें राजपाट छुड़ाकर चले आने की सलाह दूं। नहीं, अब वे सम्राट् हों क्योंकि मुझे भी तो साम्राज्ञी होना है।

[पांच]

पूरे उन्नीस साल के व्रत नियम भी बसन्त को शैवाल के पास न ला सके पर क्या एक क्षण को भी उसे निराशा हुई। सूर्य का आदमी का, विष्णु का, इन्द्र का और मरुतों का ध्यान भी उसे एक पग आगे न बढ़ा सका। पर कोई भी उसके कोप का भाजन न बना।

श्रावणी पूर्णिमा का पर्व था। सूर्य अपनी सुनहली किरणों को कानी पाप की बत्ती से अस्ताचल की ओर खींच रहे थे। शैवाल दीपक जलाकर मार्गदर्शी की आरती करके ज्योंही ऊपर आई त्योंही उसे मालूम हुआ कि उसके घर पर कोई अतिथि आया है।

शैवाल चौंक पड़ी—मेरे घर पर और अतिथि ! संसार की भयानक विपत्तियों ने भी जहाँ का आतिथ्य स्वीकार करने का कष्ट नहीं किया वहाँ कौन आयेगा ! मुझे कौन जानता है इस संसार में ! स्वप्न से लौटकर कोई अतिथि होने को आता नहीं । पिता-माता दोनों ही स्वर्ग पहुँच चुके हैं । राजमुकुट मस्तक पर धारण करके पूरे उन्नीस साल बाद क्या कोई आ सकता है !

शैवाल का हृदय धड़क उठा । उसकी धमनियाँ-शिराएँ बिजली से व्याप्त हो गईं । अतिथि ! अतिथि !—कहती हुई वह मन्त्र-मुग्ध-सी अपने घर की ओर चली पर वास्तव में उसे अपने शरीर का भान नहीं था ।

द्वार के सामने संध्या के अन्धकार में एक परछाईं हिल रही थी । दूर पर लता-वृक्षों की छाया में सघन वन-प्रदेश आच्छादित हो रहा था । पृथ्वी पर चलती हुई शैवाल धीरे धीरे आकाश में उठने लगी । उसे प्रतीत होने लगा कि आज कण्व का आश्रम दुष्यन्त के आगमन से महोत्सवमय हो उठा है । उसके चालीस सालवाले जर्जर शरीर में मुग्धा शकुन्तला के मधुर हाव भाव तरंगित होने लगे । उसे प्रतीत होने लगा जैसे सचमुच ही उसका वल्कल-वसन चलते-चलते करील के काँटों में उलझता जा रहा है ।

द्वार के समीप पहुँची तो पुरुष नहीं किसी स्त्री की छाया आपन्न दीन थी । शैवाल मनकी अवस्था को मौन के आवरण में लपेटे उस मानवमूर्ति के सामने जा खड़ी हुई और उसे पहचानने का यत्न करने लगी । साथ किसी साड़ी की सरसराहट और आभूषणों की मधुर झनकार के साथ

एक रमणी उठकर खड़ी हो गई और उसने बढ़कर पुकारा—शैवाल मेरी प्यारी शैवाल ! सखी, कहां तुम अच्छी तो हो !—वह बढ़कर शैवाल के शरीर से लिपट गई।

सहसा शैवाल के मुंह से भी निकल गया—मेरी प्यारी मालिनी ! तुम अबतक कहां थी ?

कहां कहूं बहन दुनिया की ऊंची-नीची तरंगों का उत्थान पतन देख रही थी। सुख और आनन्द, आशाएं और उनकी पूर्ति में भी मनुष्य को संतोष नहीं होता। वह सदा अप्राप्य की आशा में भटकता रहता है। अभाव मात्र के लिए छटपटाता है और भार अपने उस अभावमय जीवन की आस अतृप्त रहता है।—हां और तुम कैसी रहीं ?"

मैं, मुझे तो तुम देख ही रही हो। मेरे जीवन में पर्वत की अचलता, तपोवन की सौम्यता और तूफान की अशान्ति का एक अद्भुत मिश्रण सदा ही बना रहा है।"

"यही तो देखती हूं बहन तुम इतने ही दिनों में सन्यासिनी-सी दिखने लगी हो। यह क्यों ?—और तुम्हारा वह बगीचा कैसा है ? मैंने और तुमने जो आम के पेड़ लगाए थे वे कैसे हैं ?"

एक भूली स्मृति शैवाल के अन्तःप्रदेश को मथने लगी। वह बोली—सखी वे वृक्ष तो अब पहाड़ की चोटी से बातें करने लगे हैं। उनके शैशव की याद तो मेरे मन में भी एक कहानी हो गई है।—और बहन अपना वह हिरन का बच्चा हाय ! बेचारा कैसा सुन्दर था, कभी का मर चुका है। उसके कारण अब उन सबों से झुके हुए वृक्षों के पास

जाने का भी नहीं करता है।

मालिनी ने कुछ रुककर कहा—उसकी अधखुली आँखें तो अभी तक मुझे याद हैं और उसका वह फुदकना हाय! कैसा सुन्दर था! एकाएक शैवाल को सखी के वे शब्द याद आ गये कि तुम कैसी सन्यासिनी सी दिखती हो? उसके दिल पर ठेस लगी वह तो अबतक अपने को भावी साम्राज्ञी ही समझ रही थी।—लेकिन उसने कुछ कहा नहीं।

दोनों सखियाँ बड़ी देर तक अपने गत जीवन की बातें करती रहीं।

थोड़ी देर में तीन चार अनुचरों के साथ दो बालक आये। शिरीष से कोमल और गुलाब से प्रफुल्ल। उन्हें आते देखकर मालिनी ने कहा—बहन! ये तुम्हारे ही बच्चे हैं। बड़े को स्वामी ने आने नहीं दिया है। वह अपने पिता का बहुत प्यारा है। फिर बच्चों से कहा—विमू! अपनी मौसी को प्रणाम करो। किशन्! तुम भी प्रणाम करो।

लड़कों ने माँ की आज्ञा का पालन किया। शैवाल ने बारी बारी से दोनों को चूमकर आशीर्वाद दिया। उसकी सूनी गोद आज मातृ-स्नेह से पवित्र हुई।

मालिनी ने बच्चों को भेज दिया आप थोड़ी देर और बैठी रही।

माता-पिता की मृत्यु के दुख-सुख के साथ विवाह की बातें चल पड़ीं। मालिनी ने शैवाल से पूछा—बहन और तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ है? वैवाहिक जीवन की कुछ बातें बताओ।

शैवाल ने कहा—विवाह हो गया है, पर वे बहुत दिनों से विदेश

चले गये हैं । कब आते हैं, उन्हीं की प्रतीक्षा में हूँ ।

मालिनी—मैं शीघ्र यात्रा को निकली हूँ तुम अपने स्वामी का पता मुझे देना । मैं अवश्य ही उन्हें घर भेजूंगी । बड़े दुख की बात है मैं तुम्हारे स्वामी से परिचित नहीं हूँ पर तुम तो बहुत मेरे स्वामी से भली भांति परिचित हो । हम लोग अवसर तुम्हारी चर्चा चलाकर बीते दिनों की याद करते हैं । उसने अपने स्वामी का परिचय दिया । उसके हृदयेश्वर का अपना स्वामी बतानेवाली उस वास्तवस्वरूपी को शैवाल भला फिर अपने स्वामी का क्या परिचय देती ?

उसका शरीर कांपने लगा । पैर के नीचे की पृथ्वी खिसकने लगी । सिर पर आकाश घूमने लगा । सारा संसार अंधकार से आच्छन्न हो गया । उस अंधकार में मालिनी के कान्तिमान मुखमंडल का देखकर शैवाल को प्रतीत हुआ कि वह अवश्य ही साम्राज्ञी और मैं सम्मानिनी—नहीं, पथ की भिखारिणी हूँ ।

कुछ देर ठहरकर मालिनी ने विदा ली । उसको समय नहीं था । प्रातःकाल प्रस्थान करना था और इधर शैवाल का हृदय अपना स्थान छोड़ रहा था । वह दुख से दीन हो रही थी । उसी दशा में उसने अपनी सखी को विदा दी । कह दिया—स्वामी का पता और परिचय सब लिखकर भेज दूंगी ।

[छः]

क्षुब्ध, प्रतारिता, विरह विधुरा, अपमानिता और तिरस्कृता

शैवाल शून्य आकाश की ओर दृष्टि लगाये अपने पूर्व जीवन को प्रत्यक्ष कर करके देखती और दुखी होती रही । दुःख क्षोभ और ग्लानि के मिश्रित भावों से उसका मन भर गया । वह सोचने लगी—मेरे विश्वास ने मुझे धोखा दिया है । दुनियाँ के उपन्यासों कहानियों और इतिहासों—सभी में तो अनेक बार भोली-भाली कन्याओं के ठगे जाने के रोचक वृत्तान्त लिखे हैं । मेरी सरलता ही ने मेरे सुख का नाश कर दिया । पर नहीं, उन्होंने ही मेरे साथ विश्वासघात किया है । अपराध का दण्ड तो उन्हें मिलना ही चाहिए किन्तु एक भिखारिणी के लिए एक सम्राट को दण्ड देने का कौन साहस करेगा ? मैं तो कुछ नहीं कर सकती । हाँ एक पत्र लिखकर अच्छी तरह उन्हें फटकार सकती हूँ । बस मैं एक कड़ा-सा पत्र उन्हें लिखती हूँ ।

कहीं भूल से गलती हो गई हो, और वे उसका प्रायश्चित करने के लिए तैयार हो जाय ? कहीं वे मेरे आत्मपीड़न के लिए, गुस्सा शान्त करने के लिए, दौड़कर मेरे पास आ जाय तब मैं क्या करूँगी ? जो बात हो चुकी है वह लौट नहीं सकती । मुझे जब न्याय करना चाहिए था तब की न मालूम तो यों ही चला गई । अब अभिलाषाओं की समाप्ति के लिए उन्हें विचलित करने की आवश्यकता ही क्या है ? पर अब जब उनका पता मिल गया है तो मैं उन्हें एक पत्र जरूर लिखूँगी । हाँ ! पर लिखूँ क्या ? यह भी तो समझ में नहीं आता ।

उन्होंने मुझे रुलाया तो बहुत है पर अब उस बात का समय कहाँ ? मैं उनके हृदय को दुखाऊँ ? नहीं । तो अब कौनसा अरमान बाकी

रह गया है ? जिसके लिए कुछ लिखने बैठी हूँ। स्वप्न ही सब कुछ है। हाँ एक बात लिख सकती हूँ। वह मेरे जीवन की अन्तिम अभिलाषा है। मेरा समस्त जीवन एक स्वप्न का खेल ही तो रहा है। सम्भव है गोधूलि के इस धुँधले प्रकाश में सत्य से स्पर्श हो सके तो मैं जीवन को कृतार्थ समझूँगी। बस इसीलिए लिखूँगी।

कुमारी होकर भी मैं जिनकी बनी रही हूँ उन्हें मैं अवश्य लिखूँगी कि वे उसी तरह मुझे पुलकित होने का सुख दिला दें। उनके तीन बच्चे हैं। एक मेरे पास आ जायगा। क्या हो! कैसा सुन्दर होगा वह बालक। उसकी मीठी तोतली बोली में कितना स्वाद होगा। मैं छक जाऊँगी। मुझे सब कुछ मिल जायगा।

पत्र तो लिख गया। मेरे दुःख से वे मर्माहत अवश्य हो जायेंगे। उनके नेत्रों में दया झलक उठेगी। इसके वाक्य वाक्य में व्याकुल कुमारी का क्रन्दन है। इसकी पंक्ति-पंक्ति में वेदना की मूक रागिनी है और उनका हृदय भी तो पत्थर का नहीं। उन्हें दीन से सहानुभूति है। वह अवश्य पिघल जायगा, पाषाण पानी हो जायगा। मेरे भाग्य के सितारे का वह शीत-बिन्दु होगा। संवेदना के आकाश में उसका उदय होगा और हृदय के वातावरण में पास होकर उसकी शीतल स्निग्ध किरणें मेरे शुष्कप्राय अन्तःकरण में सुधा सिंचन करेंगी। यह पत्र उनके हाथ में होगा और मेरा पुत्र मेरी गोद में। तो क्यों न स्वप्न देखूँ? अभी जागती हूँ पर क्या मैं जीवन निशा के समस्त पहरों में एक सुन्दर स्वप्न नहीं देख सकती हूँ? प्यार की भिक्षा माँगकर अब पुत्र की भिक्षा माँगने का साहस नहीं

हो रहा है । अभी तक मैं उनकी छायावी अमन का स्वप्न ही सा देख रही थी । यह जागृत और प्रत्यक्ष से कितना भला था ।

बस, मैं अपने प्रेम-पत्र की इस अभिलाषा को स्वप्न ही से प्रत्यक्ष कर लूँ तो कितना सुन्दर हो । जैसे मैंने उन्हें अपना सर्वस्व मानकर जीवन निछावर किया ही । उसी प्रकार यह भी मान लेती हूँ कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है । पुत्र को मेरे पास भेज दिया है । मैं उसे खिलाती हूँ । दुलारती हूँ । वह किलकिलाता है । हँसता है । मुझे माँ-माँ कहता है । मेरा यह स्वप्न नहीं कल्पना नहीं परम सत्य है । पत्र लिखते ही तमाम काम बन गया तो अब उसे क्यों भेजूँ ? भिखारिणी को बिना माँगे मोती मिल गया तो वह क्यों याचना करे ? चालीस वर्ष की अवस्था में लालसाओं की सुनहली स्याही से लिखा हुआ मेरा यह प्रेम पत्र लेटर बक्स में नहीं मेरे रत्न-जटित आभूषणों के साथ सुहाग की गुलाबी साड़ी में तह किया हुआ बड़ी हिफाजत से रक्खा रहे । क्योंकि इसमें मेरे सुखमय जीवन का स्वर्णिम आलोक स्मृति के रूप में बिखरा हुआ है । शैशव काल में जिन सुकुमार कुसुमों का चयन किया था । उन्हीं को पूर्वानुराग के रेशमी सूत में फिर विरह के मखमली धागे में सुबह से शाम तक गूँथ-गूँथ-कर सुरभित दिव्य हार तैयार किया था और जिसे अब तक उरान्तर में छिपाये हुए थी आज—आज वही तो निखरकर इस पर आपड़ा है । फिर इसे लेटर-बक्स में क्योंकर डालूँ ? इसमें मेरा सुख है । मेरी स्मृति है । मेरा गौरव है । यह मेरी आँखों के सामने ही रहे तो अच्छा । इसी से इसे रख लेती हूँ । यह रहे मेरी सुहाग की साड़ी में क्योंकि इसने मुझे रही-

सही लालसा का साक्षात् करा दिया है ।

शैवाल ने बड़े यत्न से मोड़कर वह पत्र तार-तार हो रही अपनी सुहाग की साड़ी में रख लिया । उस समय उसके आनन्द का ठिकाना नहीं था । सचमुच ही अनिर्वचनीय रूप से उसका कलेवर शिथिल हो रहा था । रात्रि के प्रथम दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे । उसके घर की दीपशिखा धीरे धीरे मलिन हो रही थी । सुदूर वनान्त में राजमहिषी मालिनी देवी के प्रस्थान की तैयारियाँ हो रही थीं । दो कोमल बालक उनके अञ्चल से खेल रहे थे । शैवाल भी अपने कल्पना प्रसूत पारिजात-कोमल पुत्र को धीरे-धीरे, हँस-हँसकर, सिसक सिसककर चुम्बन कर रही थी । उसका मुख कितना सरल और रमणीय था ।

जा रहा है । अभी तक मैं उनकी साम्राज्ञी बनने का स्वप्न ही तो देख रही थी । वह जाग्रत और प्रत्यक्ष से कितना भला था ।

अब मैं अपने प्रेम-पत्र की इस अभिलाषा को सच ही से प्रत्यक्ष कर लूँ तो कितना सुन्दर हो । जैसे मैंने उन्हें अपना सरस मधुमय जीवन निछावर कर दी । उसी प्रकार मैं यह भी मान लेती हूँ कि उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है । पुत्र को मेरे पास भेज दिया है । मैं उस भिखारिन हूँ । कुमारी हूँ । वह किसलिये आता है । देखता है । मुझे माँ-माँ कहता है । मेरा यह स्वप्न नहीं कल्पना नहीं परम सत्य है । पत्र मिलते ही तमाम काम बन गया तो अब उसे क्यों भेजूँ ? भिखारिणी को बिना माँगे मोती मिल गया तो वह क्यों याचना करे ? चालीस वर्ष की अवस्था में लालसाओं की सुनहली स्याही से लिखा हुआ मेरा यह प्रेम-पत्र लेटर बक्स में नहीं मेरे रत्न-जटित आभूषणों के साथ सुहाग की गुलाबी साड़ी में तह किया हुआ बड़ी हिफाजत से रक्खा रहे । क्योंकि इसमें मेरे सुखमय जीवन का रंगीन भावुक स्मृति के रूप में बिखरा हुआ है । शैशव काल में जिन सुकुमार कुसुमों का चयन किया था । उन्हीं को पूर्वानुराग के रेशमी सूत में फिर विरह के मखमली धागे में सुबह से शाम तक गूँथ-गूँथ कर सुरभित दिव्य हार तैयार किया था और जिसे अब तक उरअन्तर में छिपाये हुए भी प्राण—प्राण वारी तो निछावर इस पर आपका है । फिर इसे लेटर-बक्स में क्योंकर डालूँ ? इसमें मेरा सुख है । मेरी स्मृति है । मेरा सर्वस्व है । यह मेरी आँखों के सामने ही रहे तो अच्छा । इसी से इसे रख लेती हूँ । यह रहे मेरी सुहाग की छाया में क्योंकि इसमें मुझे रही

सही लालसा का साक्षात् करा दिया है ।

शैवाल ने बड़े यत्न से मोड़कर वह पत्र तार-तार हो रही अपनी सुहाग की साड़ी में रख लिया । उस समय उसके आनन्द का ठिकाना नहीं था । सचमुच ही अनिर्वचनीय रूप से उसका कलेवर शिथिल हो रहा था । रात्रि के प्रथम दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे । उसके घर की दीपशिखा धीरे-धीरे मलिन हो रही थी । सुदूर वनान्त में राजमहिषी मालिनी देवी के प्रस्थान की तयारियाँ हो रही थीं । दो कोमल बालक उसके अञ्चल से खेल रहे थे । शैवाल भी अपने कल्पना-प्रसूत पारिजात-कोमल पुष्प का धीरे-धीरे, हँस-हँसकर, सिरक-सिरककर चुम्बन कर रही थी । उसका सुख कितना स्वच्छ और रमणीय था ।

डाक-मुंशी

मेरा भाग्य उलटा है या सीधा — यह सदा मेरे लिए एक पहेली बना रहा है। मैं कभी उसे सुलझाकर समझ न सका। कभी एक क्षण के लिए भी उसकी मीमांसा न कर पाया। बुद्धि की गांठ खोलकर अपने विषय में स्वयं निश्चय से कभी मैं निश्चित विचार धारा में बहकर मन की हरारत को मिटा न पाया।

शैशव आकाश में उड़ा था, सुनहले स्वप्नों में खेला था। जवानी अमावस के अन्धकार में बही हुई दिव्या की मरुस्थल शून्य निराशा में उसने स्वास्थ्य की आँखें मींची। अन्तर व्यवधान! विधाता की लीला देखिए। सब कुछ देकर कुछ भी न दिया और कुछ भी न देकर इतना बहुत सामने डाल दिया है—मैं आँखें मूँद सिर भर नहीं पाता हूँ इसलिए कि मैं अपना वज़न सिर्फ ऊपर नहीं पाता हूँ।

मैं स्वयं डाक-मुंशी हूँ। यह नौकरी मुझे अनायास मिल गयी है इसीमें मैं यह भी तय नहीं कर पाता हूँ कि यह मेरे सौभाग्य का चिह्न है या अभाग्य का पथ! मैं सचमुच इसके लिए तैयार न था। यह आप ही आकर गले पड़ गयी। अब छोड़ते भी नहीं बनता है। सच पूछो तो छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती।

मैंने गरीब के घर जन्म लेकर रईस की लड़की का पाणिग्रहण किया था। कम उमर में जब शादी एक खेल थी। मैं ग्यारह बरस का था मेरी पत्नी उनकी भाग बरस की। उस वक्त मुझे इतना ही मालूम था कि यह जोड़ी मिलाने के लिये मेरे श्वसुर ने मेरे बाप से मुझ मातृहीन को खरीद लिया था। अमीर को गरीबों पर जो घृणा और नफरत होती है उसी से मैंने बार-बार अपनी जन्म तिथि की अभ्यर्थना की थी। मैं मोटर पर घूमता था। घर पर तीन-तीन मास्टर लगे थे। एक अंग्रेजी पढ़ाता था एक हिसाब और एक मातृ भाषा। लेकिन स्वप्न की वह सुनहली रात बहुत थोड़े दिन रही। बाजाब्ता करते करते मेरे श्वसुर मेरे लिए कुछ भी न कर सके। न जाने कौनसा संशय या संस्कार उन्हें रोकता रहा। लेकिन उनकी यह अभिलाषा अवश्य थी कि सम्पत्ति और मेरे सिवा उनका उत्तराधिकार किसी को न मिले। उनकी अभिलाषा उन्हीं के साथ चली गयी। माँ-बाप हीन भिखारी (मेरे बाप मर चुके थे) के भाग्य के साथ सुकुमारी कुमारी बदली का भाग्य भी विडम्बना के सूत्र में गुँथ गया। हम दोनों अबोध और अनभिज्ञ थे। अचानक श्वसुर चल बसे। कोई ट्रस्ट नहीं बनाया कोई लिखा पढ़ी नहीं की किसी से कुछ कहा भी नहीं। हम दोनों रोते रह गये। जनती के चाचा ने हम दोनों को रोने भी न दिया।

स्वार्थ जब का तो होता ही है वह हृदयहीन भी होता है। उसे अनाथों और दुखियों की सिसक की अनुभूति होती ही नहीं। चाचा ने घर पर दखल किया और मुझे बाहर जाकर रुपया कमाने की सलाह दी। अनंत संपत्ति के उत्तराधिकारी को भी कभी-कभी उपरमेषण

डाक-मुंशी

मेरा भाग्य अच्छा है या खोटा, यह सदा मेरे लिए एक उलझी पहेली रहा है। मैं कभी उसे गुणभागकर समझ न सका। कभी एक क्षण के लिए भी उसकी मीमांसा न कर पाया। तृप्ति की साँस लेकर इसके विषय में स्वस्थ चित्त हो कभी मैं निश्चित विचार धारा में बहाकर मन की हरारत को मिटा न पाया।

शैशव आकाश में उड़ा था सुनहले स्वप्नों में पला था। जवानी अमावस के अन्धकार में बनी हुई विधवा की कल्पना शून्य निराशा में उसने स्वस्वरूप की सांसें लीं। यह हर भगवान! विधाता की लीला देखिए। सब कुछ देकर कुछ भी न दिया और कुछ भी न देकर इतना बहुत सामने डाल दिया है—मैं लोभ में तिल भर नहीं पाता हूँ दृष्टि के इस पार से तिल बराबर नहीं पाता हूँ।

मैं मध्य डाक मुंशी हूँ। यह नौकरी मुझे अनायास मिल गयी है इसलिए मैं यह भी तय नहीं कर पाता हूँ कि यह मेरे सौभाग्य का चिह्न है या दुर्भाग्य का फल। मैं सचमुच इसके लिए तैयार न था। यह आप ही आकर गले पड़ गयी। मन छोड़ते भी नहीं बनता है। सच पूछो तो छोड़ने की इच्छा भी नहीं होती।

मैंने गरीब के घर जन्म लेकर रईस की लड़की का पाणिग्रहण किया था उस उमर में जब शादी एक खेल थी। मैं ग्यारह बरस का था मेरी पत्नी अपनी सात बरस की। उस वक्त मुझे इतना ही मालूम था कि यह जोड़ी मिलाने के लिये मेरे ससुर ने मेरे बाप से मुझ मातृहीन को खरीद लिया था। अमीर को गरीबी पर जो घृणा और नफरत होती है, उसी से मैंने बार-बार अपनी जन्म तिथि की भर्त्सना की थी। मैं मास्टर पर पलता था। घर पर तीन-तीन मास्टर लगे थे। एक अंग्रेजी पढ़ाता था एक हिसाब और एक संस्कृत भाषा। लेकिन स्वप्न की यह सुनहली रात बहुत थोड़े दिन रही। आजकल करते करते मेरे ससुर मेरे लिए कुछ भी न कर सके। न जाने कौनसा अशुभ या संस्कार उन्हें रोकता रहा। लेकिन उनकी यह अभिलाषा अवश्य थी कि अपनी और मेरे सिवा उनका उत्तराधिकार किसी को न मिले। उनकी अभिलाषा उन्हीं के साथ चली गयी। माँ बाप हीन भिखारी (मेरे बाप मर चुके थे) के भाग्य के साथ सुकुमारी कुमारी लक्ष्मी का भाग्य भी विडम्बना के गर्त में डूब गया। हम दोनों अबोध और अपरिचित थे। एकाएक ससुर चल बसे। कोई ट्रस्ट नहीं बनाया कोई लिखा पढ़ी नहीं की किसी से कुछ कहा भी नहीं। हम दोनों ठगे रह गये। लक्ष्मी के चाचा ने हम दोनों को रोने भी न दिया।

स्वार्थ अन्धा तो होता ही है वह हृदयहीन भी होता है। उसे अनाथों और दुखियों की सिसक की अनुभूति होती ही नहीं। लक्ष्मी को चाचा ने घर पर रख लिया और मुझे बाहर जाकर रुपया कमाने की सलाह दी। अनन्त संपत्ति के उत्तराधिकारी को भी कभी-कभी उदरपोषण

के लिए जीविकोपार्जन की जरूरत पड़ जाती है। परिस्थितियाँ सब कुछ करा लेने की क्षमता रखती हैं।

मेरी उम्र के आदमी सिवा स्कालरशिप के और किसी उपयोग में शायद बहुत कम आते हैं, पर हमारे श्वसुर के सहोदर की दृष्टि में मुझे घर पर बिठाकर खिलाना और मेरे लिए पढ़ाई में कुछ खर्च करना दोनों ही फिजूल थे। जिसकी संपत्ति पर उनका भरण पोषण होता था उसी के लिए रोटियों का टोटा था।

न-जाने क्यों अबतक मैं चाचा को बिलकुल निरक्षर समझता था। पर आज देखता हूँ उन्हें भविष्य की लिपि का अच्छी तरह ज्ञान था। वे विधाता की हर एक बात को अच्छी तरह समझते थे। उन्हें मालूम हो गया था कि मेरा अतीत और भविष्य दोनों एक तरह के थे। अमावस की रात में बिजली की चमक की तरह, एक क्षणस्थायी आलोक रेखा मेरे जीवन में कहीं से आ गयी थी; पर उसका गायब हो जाना ही निश्चित था। क्योंकि वह मेरे भाग्य का फल नहीं बल्कि के भाग्य का फल थी। पर मेरे दुर्भाग्य का प्रबल आकर्षण उसे भी मिटा देने में समर्थ हो गया। इस प्रकार, केवल मैं बकाया शेष रह गया।

[दो]

कानपुर के एक आढ़तिया से मेरे समुर की बहुत रब्त-जब्त थी। मेरे भाग्य को बदलने में उसकी इच्छा तो नाममात्र को ही थी विशेष प्रयत्न था मेरे चाचा का। इस वास्ते यहां सबके आगे उस बेचारी के निष्कलंक

नाम को लेने की जरूरत ही क्या !

हां, तो सिवा बसंती के और सब लोगों की इच्छा चाचा की बात का समर्थन मात्र थी। मेरे चाचा के एक भी लड़का या लड़की नहीं थी और बसंती मेरी बालिका पत्नी, को खेलने के लिए एक साथी की जरूरत थी। बस वही मेरे प्रस्थान से दुखी थी। मैं उस समय उसकी मनो-व्यथा ठीक तरह नहीं समझ सका। यदि समझता तो शायद मैं कानपुर पहुंचने के लिए उतना उत्सुक न होता। मेरे चाचा ने मेरे मन में कानपुर का ऐसा सुन्दर चित्र अंकित कर दिया था। मैं तो उस समय इसी धुन में था कि कब कानपुर देखूं। आखिर मैं घर से चल पड़ा या चलने को विवश हो गया। उस समय मेरी अबोध अर्धांगिनी रूठकर एक कोने में जा बैठी थी। मैं उसके पास गया—अपने हृदय के साहस को बटोरकर कहा—मैं जाऊं ?

जवाब कुछ भी नहीं।

मैंने फिर कहा— तुम्हारे लिये कानपुर से क्या लाऊं ?

उसने एक ओर को मुंह फेर लिया।

मैंने सप्रेम स्निग्ध कंठ से पूछा—गुड़िया ? खिलौने ? बोलो बसंती क्या लाऊं ? आह, तुम तो बोलती ही नहीं !

कठिन नीरस निश्चल चट्टान के नीचे अनन्त स्रोत छिपा रहता है। मौन भी वैसी ही एक प्रकार की चट्टान है। उसे जरा छेड़ने से अन्तर की जल-राशि उच्छ्वास के साथ निकल पड़ती है। बसंती रो पड़ी। उसकी सरल कोमल हंसी जिन गालों पर हरदम नृत्य किया करती थी,

बहुत-सा बटोर लिया ।

इस बीच में एक बार भी मैं घर नहीं पहुँच सका । बड़ी इच्छा थी । मन ही-मन घुटा जाता था । बेचैन हो चला था । प्यारी बसंती की विदा-समय की करुण-कोमल मूर्ति आँसुओं से धुल-धुलकर उज्ज्वलतर होती जा रही थी । दिन में काम के भार से भाराक्रान्त रहता और रात्रि को स्मृतियों के अविरल पदाघात से आहत होकर चुपचाप अपने अस्तित्व को विलीन कर देता था । कानपुर और शाहजहाँपुर में अन्तर ही कितना है ? पर मेरे लिए बहुत था । घर पहुँचने का कोई साधन मुझे प्राप्त नहीं था । अपनी किसी चीज़ पर मेरा अधिकार नहीं था । मेरी तनख्वाह, जो हाल ही में दुगुनी बढ़ायी जाती थी, मेरे ससुर के भाई के नाम जमा होती थी । सच पूछो तो मुझे खुद भी अपने अधिकारों का पता नहीं था । बसंती के पिता ने मुझे खरीद लिया था, न कि उनके भाई ने इतनी मोटी बात भी उस समय मेरी बुद्धि में नहीं आयी थी ।

घर जाने की बड़ी उत्कंठा थी बड़ी लालसा । मैंने कई बार पत्र लिखे । बार-बार चाचा को जताया कि मैं अब काफी रुपया पैदा कर चुका हूँ । मैं थक गया हूँ । मैं मर रहा हूँ । अब यहाँ रहने की बिलकुल इच्छा नहीं है । आप मुझे तुरन्त बुला लीजिए ।

चाचा ने बहुत देर बाद जागकर उत्तर दिया—घबराओ नहीं काम किये जाओ । घर पर आकर क्या करोगे ? काम नहीं करोगे तो खाओगे क्या ? यहाँ क्या रक्खा है ?

मैंने और भी एक पत्र लिखा—आप मेरे खाने की चिन्ता मत

कीजिए। मुझे बुला लीजिए। मैं यहां एक क्षण भी अब नहीं रह सकता। आप न बुलावेंगे तो मैं स्वयं चला आऊंगा।

तुरन्त उत्तर आया—अच्छा मैं आ रहा हूं। वहीं आकर ठीक करूंगा।

मेरे प्राण निकल गये। जानता था क्या होगा? वही हुआ। चाचा उसी शाम को आ धमके। शायद चिट्ठी के साथ-ही-साथ चले थे। आकर मुझे कड़ी तीखी आवाज से अपमानित करते हुए कहा—क्या तुम को शर्म नहीं लगती है? यदि आराम ही भाग्य में लिखा होता तो एक मिलमैन के यहां जन्म लेते? अब तुम कैसे नाजुकमिजाज हो गये हो?

मैं क्या कहता? चुप रह गया। आंखों के आंसू भी स्तम्भित हो गये। सारा शरीर सूखी पत्ती की तरह कांपने लगा।

रात हुई। मैं जाकर अपने बिस्तरे पर लेट गया। बड़ी देर का रुका हुआ प्रवाह एकांत पाकर बड़े वेग से बह निकला। मैं सोच रहा था—हाय! मैं गरीबी भी अपनी इच्छा से भरना नहीं कर सकता? मैं कब चाचा से कुछ चाहता हूं। वे लें सब ले लें पर मुझे और मेरी प्यारी बहनी को तो उधार से मुक्त होकर रहने दें। इसमें उनका क्या आता-जाता है?

चाचा दूर खड़े हुए शायद मेरे मन को समझने का यत्न कर रहे थे। बड़े कोमल और आकर्षित करनेवाले कंठ से बोले—नरेश, बेटा! तुम्हें मेरी बातें कड़ुई तो लगी होंगी। दवा कड़ुई ही होती है।

कितने दिनों बाद चाचा मिले थे। इससे पहले तो शायद कभी

कोई उपाय नहीं था। बरसों से घर के बाहर पड़े हुये मुझ वियोगी का मन एकाएक पुलकित हो उठा। कुछ घंटे पहले चाचा का मेरे प्रति क्या व्यवहार था यह मैं उस समय याद न रख सका। अभी एक बार नैराश्य और दुःख से रो चुका था अब हर्ष और आनंदातिरेक से रो पड़ा। हिचकियाँ बंध गयीं सांस फूलने लगी।

कुछ देर के बाद मिश्री की डली-सी देते हुए चाचा ने कहा—मैं तो तुम्हारे भले की कहता हूँ। कुछ दिन यहां और रह जाओगे, तो आदमी हो जाओगे। अगर जानवर की तरह ही जीवन बिताना चाहते हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।

मैंने अनेक आशाओं से आशान्वित होकर प्रार्थना के से स्वर में कहा—अच्छा तो मैं लौट आऊंगा पर एक बार आप मुझे घर लेते चलें। घर जाने की मेरी बड़ी इच्छा है।

आशा था इस दासी-सी प्रार्थना को चाचा स्वीकार कर लेंगे। पर उन्होंने नहीं किया। घर लाते तो क्या बुराई हो जाती, यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया। उन्होंने बहुत कड़े तरीके से कहा—अच्छा इस बार तो मैं सीधा घर नहीं जा रहा हूँ। अब की बार आऊंगा तो अवश्य ही तुम्हें ले चलूंगा। मैं जल्दी ही आऊंगा। तब तक तुम और रहो।

मैं चुप रह गया। तीन बरस के बाद बहुत मिलने पर तो उनके दर्शन हुए थे; दूसरी बार अपने आप कितनी जल्दी आ जाएंगे मैं इसी बात का अनुमान लगाने लगा।

सुबह हुई। चाचा बाजार से बहुत-सी साड़ियाँ, चोलियाँ और गहने खरीद कर ले चले। मुझसे कहा—देखो, इस घर को ठीक से रखना फिर गड़बड़ी मत करना।

मेरी आँखें रंग-बिरंगी साड़ियों के पुलन्दे पर पड़ रही थीं। चाचा ने न-जाने क्या समझकर कहा, ये सब बसंती के लिए ले जा रहा हूँ। उसने बहुत जिद की थी।

मेरी आँखें आँसुओं से आप्लावित हो आयीं। चाचा चले गये। मैं मन मसोसकर रह गया। बसंती, केवल बसंती की याद भर रह गई थी।

आँसुओं से पलकों को आर्द्र करके मैं चिंतित होने पर चाचा की ले जायी हुई साड़ियों में से कभी लाल कभी आसमानी और कभी बसंती साड़ी में अपनी प्यारी बसंती को अपने सामने प्रत्यक्ष करके देखने लगा। मेरी कल्पना-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। साड़ी का उड़ता हुआ अंचल, मेरी बालिका प्रिया का क्षीण मृदुल विलास और उसका मधुर स्मित हास्य मेरी आँखों के सामने नाचते रहते थे। न-जाने क्यों मैं उन दिनों जागृति और स्वप्न दोनों में सिर्फ अपने घर का ही दृश्य देखा करता था।

[चार]

कितना समय बीत गया चाचा नहीं आये। बसंती के मृत्यु-संवाद को लेकर उनकी एक चिट्ठी एक दिन आ पहुँची। मैं आकाश की ऊँचाई से पाताल की गहराई में औंधे मुँह गिर पड़ा। मेरा भी किसी

ादइ के निष्ठुर हाथों ने अच्छी तरह मथ डाला ।

आज मैंने समझा, शायद इसीलिए चाचा मुझे नहीं ले गये थे । ाव बुला रहे हैं पर अब मैं जाकर करूंगा क्या ! शायद उनसे रोया ी न जाता होगा । मुझे रोने के लिए बुला रहे हैं । मेरे आंसुओं से ापनी छाती को शीतल करना चाहते हैं ! मैं क्यों जाऊँ ! अगर रोना ो है तो एकांत में रोऊँगा । ऐसी जगह रोऊँगा जहां से मेरी सिसक का ता उन्हें न लगे । मेरी मां ने मुझे एकबार मिलने तक न दिया । अब सकी याद में गिरते हुए आंसू देखने के लिए मुझे बुलाते हैं । न न कभी न जाऊँगा ।

तीन दिन मैंने कुछ खाया नहीं पिया नहीं । एक करवट लगातार ता पड़ा रहा । सारी आशाएं मर गयी थीं; जीवन के तमाम ाकर्षण दफन हो गये । उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी तलाश र रहा है । जी में सोचा—कह दूं, अब परलोक में ही भेंट होगी । फिर न नहीं माना नीचे उतर गया । सड़क पर एक भद्रपुरुष हाथ में ाठी लकड़ी लिए चिन्ताग्रस्त-से घूम रहे थे । सड़क पर कोई नहीं था । क देखकर पूछा—बेटे यहां कोई मंदेरापम्ब्र रहता है ?

ओफ ! न जाने कितने बरस बाद अपना पूरा नाम सुन पड़ा । ता चकित रह गया । मेरे ससुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे । नकी आदत थी । मुझे अधिक से अधिक सम्मान देना ही उनका ध्येय । । शायद वे जानते थे कि उनके बाद मैं किस किस चीज के लिए तरस ाऊँगा । उस उस चीज से व मुझे अपने जीवन-काल में अच्छी तरह

परितृप्त कर गये थे । मेरे मन की कोई साध अतृप्त नहीं छूटी थी ।

मैंने बहुत बुरी तरह से झिझककर जवाब दिया—जी, मैं ही महेश हूँ । मुझे अपना पूरा नाम लेने की हिम्मत न हुई । नहीं ताकत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी धारणा को आश्चर्यचकित करता । फिर भी वे कुछ रुके । फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो ? किसके लड़के हो ?

मैंने सब बता दिया । पर शायद इससे कुछ विशेष उन्हें पता न लगा । उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा ब्याह हो गया है क्या ?

मेरी आँखें सजल हो गयीं । कुछ जवाब देते न बन पड़ा ।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे ससुर का नाम क्या है ?

मैंने किसी तरह बता दिया । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी स्त्री का नाम क्या बसंती है ?

मैंने उनके चेहरे की ओर देखकर कहा—हाँ, नहीं था ।

मुझसे रहा नहीं गया । मैं बतलाता रो पड़ा । उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा—क्यों रोते क्यों हो ? आओ, मेरे साथ चलो । मैं तुम्हारी स्त्री को ले आया हूँ ।

मैं चिल्ला पड़ा—हैं, क्या कहते हैं आप ।

उन्होंने कुछ कहा नहीं । मुझे सीधे धर्मशाला में ले गये । उतने रास्ते में मैं कितनी बार मर-मरकर जी गया यह नहीं बतला सकता । मरी हुई पत्नी भी आयी होगी इसका मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था । फिर भी मैं उस वृद्ध पुरुष के साथ चला जा रहा था ।

प्रकृति के निष्ठुर हाथों ने अच्छी तरह मथ डाला।

आज मैंने समझा, शायद इसीलिए चाचा मुझे नहीं ले गये थे। अब बुला रहे हैं पर अब मैं जाकर करूंगा क्या? शायद उनसे ऐसा भी न जाता होगा। मुझे रोने के लिए बुला रहे हैं। मेरे आंसुओं से अपनी छाती को शीतल करना चाहते हैं? मैं क्यों जाऊं? अगर रोना ही है तो एकांत में रोऊँगा। ऐसी जगह रोऊँगा जहां से मेरी सिसक का पता उन्हें न लगे। मेरी स्त्री से मुझे एकबार मिलने तक न दिया। अब उसकी याद में गिरते हुए आंसू देखने के लिए मुझे बुलाते हैं। न न मैं कभी न जाऊँगा।

तीन दिन मैंने कुछ खाया नहीं पिया नहीं। एक करवट लगातार रोता पड़ा रहा। सारी आशाएं मर गयी थीं जीवन के सम्भ्रम आकर्षण दफन हो गये। उसी समय मैंने सुना—कोई बाहर मेरी तलाश कर रहा है। जी में सोचा—कह दूं, अब परलोक में ही भेंट होगी। फिर मन नहीं माना नीचे उतर गया। सड़क पर एक भलेमानस हाथ में पहाड़ी लकड़ी लिए चिंताग्रस्त-से घूम रहे थे। सड़क पर कोई नहीं था। मुझे देखकर पूछा—बेटे, यहां कोई महेशचन्द्र रहता है?

आफ! न जाने कितने बरस बाद अपना पूरा नाम सुन पड़ा। मैं तो चकित रह गया। मेरे ससुरजी मुझे इसी नाम से पुकारते थे। उनकी आदत थी। मुझे अधिक से अधिक सम्मान देना ही उनका ध्येय था। शायद वे जानते थे कि उनके बाद मैं किस-किस चीज के लिए तरस जाऊँगा। उस-उस चीज से व मुझे अपने जीवन-काल में अच्छी तरह

परितृप्त कर गये थे । मेरे मन की कोई साध अतृप्त नहीं छूटी थी ।

मैंने बहुत बुरी तरह से झिझककर जवाब दिया—जी, मैं ही मोहन हूँ । मुझे अपना पूरा नाम लेने की हिम्मत न हुई । मेरी हालत भी नहीं थी कि पूरा नाम लेकर मैं उनकी धारणा को आश्चर्यचकित करता । फिर भी वे कुछ रुके । फिर मुझसे पूछा—तुम कहाँ रहते हो ? किसके लड़के हो ?

मैंने सब बता दिया । पर शायद इससे कुछ विशेष उन्हें पता न लगा । उन्होंने मुझसे पूछा—तुम्हारा ब्याह हो गया है क्या ?

मेरी आँखें सजल हो गयीं । कुछ जवाब देते न बन पड़ा ।

उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारे ससुर का नाम क्या है ?

मैंने किसी तरह बता दिया । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारी स्त्री का नाम क्या बताती है ?

मैंने उनके चेहरे की ओर देखकर कहा—है नहीं था ।

मुझसे रहा नहीं गया । मैं बलबला रो पड़ा । उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और कहा—अरे रोते क्यों हो ? आओ, मेरे साथ चलो । मैं तुम्हारी स्त्री को ले आया हूँ ।

मैं चिल्ला पड़ा—हैं, क्या कहते हैं आप !

उन्होंने कुछ कहा नहीं । मुझे साथ श्मशान में ले गये । उतने रास्ते में मैं कितनी बार मर-मरकर जी गया यह नहीं बतला सकता । मेरी मरी हुई पत्नी भी आयी होगी इसका मुझे जरा भी विश्वास नहीं होता था । फिर भी मैं उस वृद्ध पुरुष के साथ चला जा रहा था ।

हो। कह दो, वह डरे नहीं। अब लो, तुम तो बोलती ही नहीं। इससे तो मैं तंग करने लगता हूँ फिर वह तो अबोध बालिका है।

राधा—मैं कहती जो हूँ चिन्ता छोड़ दो। कौन सदा बना रहता है। मेरी जैसी सौभाग्य मृत्यु तो बहुतों के लिए ईर्ष्या की वस्तु है। तुम तो समझदार हो। अधीर क्यों होते हो? ईश्वर की इच्छा होगी तो अपने कैलाश और कला को लेकर रहना लेकिन अभी कौन जानता है क्या होगा।

पारस—राधे! तुम मुझे बावला न करो। मैं यह एक भी बात नहीं सुन सकता। मालूम नहीं अब इस हृदय में थोड़ा भी आघात सहने की शक्ति नहीं रह गई है। मेरे इस जीवन में कितने आपत्तियों के पहाड़ नहीं आये और मैं उनको सह सका हूँ; किन्तु आज का यह दुःख असहनीय हो रहा है। प्रियतमे! यह बड़ा सा मकान यह रौनक यह ठाट बाट मेरा नहीं है। यह सब तो मेरी लक्ष्मी, तुम्हारे भाग्य का है। इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ; और इसी से चाहे थोड़ा बहुत इन बच्चों के हिस्से में भी पड़ जाय। नहीं तो मैं एक अभागा प्राणी हूँ।

राधा ने अपनी दोनों क्षीण बाँहें पारस के गले में डाल दीं और रोकर कहा—यह क्या कहते हो! अपने सौभाग्य की इस सुनहली मुग्ध जोड़ी को देखो। परमात्मा से प्रार्थना है यह इन्हें चिरंजीवी करे और अब मेरे लिए चिन्ता करना छोड़ दो।

अंधेरी रात थी और सरदी का भयानक मौसम। हाथ पैर ठंडे हो रहे थे। पारस की गोद में कला मुरझाई पड़ी थी। पास ही एक दूसरे

बिस्तर पर अबोध बालक बेखबर सो रहा था। मोमबत्ती जलकर समाप्त प्राय हो चुकी थी। चरन की आंखों से गरम-गरम आंसू की बूंदें बराबर झरझर कर गोद में पड़ी पत्नी के कपड़ों को भिगो रही थीं। रागिनी की निश्चल बाहें स्वामी के गले में पड़ी थीं।

एकाएक धैर्य का बंधन टूट पड़ा। बाहु की कड़ी शिथिल निर्जीव होकर झूल गई। दीपक का निर्वाण हो गया। चरन ने व्याकुल कंठ से पुकारा—मेरी रानी! मेरी स्वामिनी!—प्रिये! रागे! तुम क्यों रूठ रही हो? एक बार, केवल एकबार अपनी बाहें इस गले में और डाल दो। आह! यह घेरा कैसा तिमिर है! महाप्रलय की रात मालूम पड़ती है। दीपक, आलोक, उजाला प्रकाश! कहां हो ज्योतिर्मयी! एक किरण—केवल एक झलक!

[दो]

चरन का नाम जिस ज्योतिषी ने रखा था उसकी आंखों की दृष्टि चाहे कैसी रही हो, पर उसकी विद्या-बुद्धि में कसर न थी। उसने केवल नाम के तीन साधारण अक्षरों में जैसे उसके जीवन का सारा भविष्य अंकित कर दिया था। चरन सचमुच बचपन से चरणों की तरह दुःखी, उपेक्षित और अनादृत रहा।

कहने को वकील का लड़का था। घर में खाने की कमी न थी; पर विशेष सुविधा भी न थी। मां जो प्यार करती और कर सकती थी वह घर की स्वामिनी होकर भी दासी—नहीं भिखारिणी थी। भाग्यहीन चरन

उसी अभागी माँ के उदर से जन्मा था ।

माँ का नाम ही सिर्फ बसन्ती था वैसे न उसमें बसन्त का सा मादक रूप था न वसी बहार । जैसी रूपहीन वह थी वैसा ही था उसका भाग्य । स्वामी ने कभी उसे प्यार नहीं किया था । वह रूप वञ्चिता रस-वञ्चिता प्यार और स्नेह वञ्चिता अबला थी दुखी निरादृत और निरव-लम्ब । लेकिन उसकी विरूप आकृति और भद्दे वश विन्यास में छिपा था अनन्य प्रेम का महासागर जिसे कभी किसी ने पूछा न था, जिसका कोई ग्राहक न था ।

गँवार और कुरूप स्त्री सुशिक्षित पुरुष की गृहिणी बने इससे अधिक अपराध और क्या हो सकता है ? शासन-विधान में इसके लिए चाहे कोई धारा न हो पर नये निकले हुये वकील की प्रतिभा कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेती है । चरन के पिता ने अपनी वकालत की कारगुजारी पहले पहल अपने घर से ही आरम्भ की। मनोविज्ञान पढ़ा था । उसकी सहायता से ही आरम्भ किया । दिन में चार चार बार स्त्री की पेशी होने लगी । कभी दाल में नमक की शिकायत कभी पान में चून के लिए पेशी कभी बिस्तर पर मच्छरों के लिए भर्त्सना । आरोप बढ़ते ही जाते थे । पर जब फैसले का मौका आता तो हाथ रुक जाता । हिन्दू ला के विधाताओं की बुद्धि की बलिहारी ! उन्होंने तलाक का कहीं जिक्र ही न किया था !—न सही पर इससे क्या घर के काम-काज रुक जाते हैं ।

वकील साहब को बनाने में विधाता ने जैसी बुद्धिमत्ता से काम लिया था वैसे ही उसने बसन्ती को जरूरत से अधिक सरलता और कुरूपता

देकर अपनी बुद्धि का भी डंका पीट दिया था। अनेक तरह के कष्ट और नई नई असुविधाएं भी उसकी तन्द्रा भंग न होती। अपने करुण जीवन का उसे भान ही न था। उसमें न अभिमान था न गर्व। स्वामी कहते खड़ी हो तो खड़ी हो जाती, वे हुक्म देते बैठ जा, तो बैठ जाती।

उसके इस भाव से वकील साहब मन ही मन जल भुन कर कहते—बड़ी मूर्खा है।

वह भी चुपचाप सिर झुकाकर स्वीकार कर लेती। उसने कभी एक क्षण के लिए भी स्वामी के कथन पर अविश्वास न किया था। वह सचमुच अपने आपको वैसा ही समझती थी, जैसा वकील साहब क्रोध में आकर कह डालते।

उसका कोई काम स्वामी को पसंद नहीं आता, पर घर के प्रायः सभी काम करने उसी को पड़ते थे और हर काम के साथ सुननी पड़ती थी लम्बी फटकार। ऐसी स्त्री के स्वामी बनकर वकील साहब भी परेशान थे। उनका सरसपूर्ण जीवन व्यर्थ की खट-पट और दुश्चिन्ता में जाता था। वैवाहिक जीवन की कैसी मनोहर कल्पनाएं कर रक्खी थीं उन सब पर गँवार-कुरूप और मूर्खा पत्नी ने पानी फेर दिया था। कचहरी से जब लौटकर आते तो कभी वह द्वार के पास उत्सुकता से प्रतीक्षा नहीं करती होती। कभी-कभी रूप सौष्ठव की बात विधाता का अभिशाप मानकर भूल भी जाना चाहते थे पर पत्नी की फूहड़ कार्य प्रणाली पद पद पर उसका स्मरण दिला देती थी। जब वे चाहते कि वह बाज़ार से कपड़े और आभूषण ला देने के लिए आग्रह करे तो उस समय पत्नी बड़ी नम्रता से

चूल्हा फूँकने में लगी रहती । जब वे चाहते कि वह उनकी पुस्तकों में से किसी सरस उपन्यास को लेकर पढ़ने बैठ जाय और उसके विषय की आलोचना करने के लिये उन्हें कचहरी जाते समय थोड़ी देर रुकने के लिए अनुरोध करे, उस समय वह उनकी मढ़ाई हुई चाँदी कौड़ी हाथों या बाबा आदम की पुरानी रामायण की पोथी लेकर ध्यान-मग्न होती । कभी प्रेम पत्र लिखना न जानती थी । कभी हाव भाव दर्शाना न जानती थी । न 'प्रियतम' कहकर कभी प्रेम निवेदन करती थी । इस शुष्कता और नीरसता ने उसके रूप को और भी स्वामी की नजरों में मांदा बना दिया था ।

[तीन]

यह विषय अब तक विवाद ग्रस्त है कि पाँच साल के बालक चरन को छोड़कर बसन्ती स्वयं कहीं चली गई या वकील साहब ने ही किसी तरह उससे पीछा छुड़ा लिया । लेकिन इसमें संदेह नहीं कि बेचारा चरन बिना माँ का रह गया ।

बसन्ती का कहीं पता न लगा । लेकिन स्त्रियों का पता न लगने से पुरुषों के जीवन में कोई अभाव आ जाता हो यह बात नहीं तथापि वकील साहब ने मन ही मन उसे बहुत अनुभव किया । क्योंकि बसन्ती को न सही तो वे चरन को तो प्यार करते ही थे । बच्चे की ममता उन्हें उसकी याद दिलाये बिना न रहती जिसके लिये उनका जीवन सदा घृणा के भाव से भरा था ।

बच्चे के लालन-पालन के लिये हो, चाहे अपने आराम के लिये, उन्होंने शीघ्र ही दूसरा विवाह कर लिया। स्त्री आई सुन्दरी पढ़ी-लिखी अप-टू-डेट। उसने वकील साहब के कड़ुए जीवन में अपूर्व मिठास पैदा कर दी। पर बेचारे चरन की दशा में कुछ भी परिवर्तन न हुआ। वह उसी तरह पिता के निष्फल प्यार और माता के उपेक्षित प्यार में अपने बचपन के दिन व्यतीत करता रहा।

सातवीं साल में वह स्कूल में पढ़ने गया। उसके भोले चेहरे और मिष्ट संभाषण में एक जादू था, जो सब पर असर डालता था। पिता उसके ऊपर कृपालु थे। विमाता का भाव भी कोमल हो चला था। सौभाग्य के सुनहले स्वप्न आने में देर न थी। वह मन ही मन प्रफुल्लित हो रहा था। अचानक विमाता का भाव बदल गया। वह फिर चरन से खिंची रहने लगीं पर उसकी समझ में कुछ न आया।

उसकी पैतृक सम्पत्ति चाहे कितनी ही थोड़ी क्यों न थी, पर वह अब तक उसका अकेला उत्तराधिकारी था। अब उसका वह अधिकार भी गैर आनेवाला था। यही नहीं धन-सम्पत्ति के अतिरिक्त पिता और विमाता का प्रेम भी उस पर न रहा। न जाने कितने जन्मों की शत्रुता का बदला लेने के लिये विमाता के गर्भ से एक बालक ने भाई बनकर जन्म लिया। भाई का स्नेह मधुर प्याला लेकर एक राहु उदय हुआ जिसने अभागे चरन के समस्त सुखों का नाश कर दिया।

[चार]

चरन स्कूल में पढ़ता था। उसकी विमाता सुन्दरी और पढ़ी-

लिखी थी। वकील साहब ने इस शादी में अपनी सुरुचि का पूरा उपयोग किया था। वर चुनने में उन्होंने बिलकुल नये ढंग से काम लिया था। पत्रों से गुण दोषों की कभी-कभी परख नहीं हो पाती। इसलिए उन्होंने लड़की स्वयं देखकर पसन्द की थी। इसीसे कांग्रेसी होने पर भी ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों में श्रद्धा रखनेवाली श्री से उनका ग्रन्थि-बन्धन हो गया पर दोनों के लचीले स्वभाव ने इस मतान्तर की खाई को दुर्लंघ्य न होने दिया। श्री समाज के जलसों में बेरोक—टोक जाती थी। स्वामी अपने सम्य विश्वास और धार्मिक विचारों के अनुसार काम करते थे। एक समय था जब वसन्ती का रामायण पढ़ना उन्हें अखर जाता था, पर उसके आदर्श हो जाने के बाद से उन्हें रामायण की ओर विशेष रुचि हो गई थी। न जाने क्यों पर फिर भी स्त्री पुरुषों में पूरी-पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता थी। नवयुग की नई रोशनी में गृहस्थी का कायाकल्प हो गया था।

स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के भी अवस्था भेद से रूप बदला करते हैं। जबतक किसी आर्थिक चिन्ता का सामना नहीं पड़ा तबतक मज़े में चलता गया, पर जब श्रीमती के लिये तांगे के पैसे एक रुपये का बोझ प्रतीत होने लगे तो धार्मिक मतान्तर का कुत्सित रूप कुछ कुछ स्पष्ट हो चला।

किसी सम्प्रदाय की हो, स्त्रियों में धार्मिक विश्वास का आधिक्य होता ही है। वे जिस बात को मानती हैं अन्तःकरण से मानती हैं। वकील साहब के इशारा करने पर भी श्रीमती ने समाज में जाना नहीं छोड़ा। बल्कि और नियमित हो गईं। पति-पत्नी की इस पारस्परिक खींचातानी में आर्थिक समस्या और उलझ गई। विश्व के आदिकाल से जो होता

है अन्त में वही हुआ। रमणी का हठ रहा पुरुष को झुकना पड़ा। पूर्ववत् विरोध का तागा अलिता का समाज मन्दिर का भार ले जाता रहा। हाँ मन्दा सा अन्तर यह अवश्य हुआ कि बारह रुपया महीने का एक नौकर दुकान दिया गया और बरस भर स्कूल में ऊपर अपना समय और दिया। अब वह मासिक बरताव करता था उसकी जगह पर का काम काज देखने लगा।

बर्कले साहब ने कुछ विरोध नहीं किया इसलिए यह नहीं कह सकते कि उन्होंने इसे पसन्द नहीं किया। चारु चारु के स्थान पर आ गया और बरसों के स्थान पर आर्जन दिन में ही अभ्युदय का आरम्भ होता है।

यहाँ बरन के भाग्य या इतना भारा बनाया था वहीं विनता ने बचपन में ही उस कुशाग्र बुद्धि देकर बड़ी समझदारी का काम किया था। पढ़ना लिखना दूर कर घर की देख करते करते ही वह अक्सर अपने जीवन की आलोचना कर लेता था। वह मनही मन जानता था कि विनाता के किस शब्द का वह गांठ में लेकर मुस्कराता और माथे पर चढ़ाकर रखता है वह यदि बड़ा होने पर इतना कृतघ्न न हुआ कि उसे घर से निकाल दे तो भी बड़े भाई का पद तो कदापि न दे सकेगा। अपने पिता के घर में हर समय हर बात में, पग-पग अनुभव कर उसके जीवन का रस-सत्व सूखा जाता था।

लड़कों में बचपन की जो उमंगें होती हैं जिस चञ्चलता और चापल्यता से उनका जीवन हरा-भरा बना रहता है, व उसमें बहुत से

पाती । उसने न कभी लाड़ जाना था, न दुलार । एक बार भी कभी किसी बात के लिए रूठकर उसने माँ बाप को घुटनों के बल न झुका पाया था । कभी इठलाकर चलने की क्षमता उसमें न आई थी पर यही दुर्बल-कोमल चरन पुरुषार्थ का पुतला बन गया । ज्योंही उसने सुना कि उसकी माँ हरिद्वार में है वहीं गंगा-तट पर वह फूल बेचती है त्योंही वह शिशु के घर से बाहर हो गया । हरिद्वार कहाँ, किधर, कितने मील है, यह सोचने का कष्ट उसने नहीं उठाया ।

जिसके पास खाने को एक पैसा नहीं, ओढ़ने-पहनने को कपड़े नहीं वह दुधमुँहा बालक इतने मील का सफर करने के बाद, कितने कष्ट झेलकर हरिद्वार पहुँचा होगा इसकी यथावत् कल्पना सब कोई नहीं कर सकते । केवल माँ का प्यार उसे वहाँ खींच ले गया । तकलीफों को उसने मार्ग के फूल समझा ।

उसने हरिद्वार की गली गली छान डाली । जितनी मालिनें गंगा तट पर फूल बेचती थीं उन सभी को अपनी करुण कहानी से एक-एक बार उसने रुला दिया पर माँ का कहीं पता न चला ।

माँ को न पाकर वह निराश था । अब चारों दिशाएँ उसके लिए समान थीं । हरिद्वार की मनोरम गलियाँ उसे सूनी प्रतीत होती थीं । एक दिन वह गाड़ी में सवार हो लिया । गाड़ी कहाँ किधर जायेगी इस दुविधा में पड़ना उसने उचित नहीं समझा ।

मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं । भूख-प्यास से मुँह सूख रहा था । गाड़ी [illegible] से आ रही थी । उसी चलती गाड़ी में एक जटा-धारी साधु

चढ़ आया । सब लोग उस अपना अपना टिकट दिखाने लगे । चरन का दिल धड़कने लगा । जब बाबू ने उसकी ओर फिरकर टिकट माँगा तो उसके मुँह के अन्दर जीभ अटक गई और वह सिसक-सिसक कर रोने लगा ।

एक महाशय बड़ी देर से चरन की दशा पर मन ही मन तरस खा रहे थे । उन्होंने बच्चे को विपत्ति में पड़ा देखकर कहा—यह लड़का मेरे साथ है । इसके टिकट के दाम मुझसे लीजिये ।

जेब से मनीबैग निकाल कर रुपये गिन दिये और रसीद लेली । चरन मन ही मन बहुत लज्जित और संकुचित होकर आँसू पोंछने लगा । थोड़ी देर में उन महाशय ने कहा—लो बच्चे । यह रसीद । बनारस तक का टिकट है । तुम कहाँ उतरोगे ?

चरन ने काँपते हुए हाथों से रसीद लेली पर उनकी बात का कुछ उत्तर न दे सका । उन्होंने फिर पूछा—तुम्हारा घर कहाँ है ?

उत्तर में चरन ने रो दिया ।

[पाँच]

सुन्दरलाल को मालूम हुआ तो वे चरन को अपने साथ ही ले आये । एक अपरिचित घर में अनायास आकर चरन ने माँ-बाप दोनों को पा लिया । जिस अभाव की ज्वाला से उसका कोमल मन जल रहा था, वह न रहा । सुन्दरलाल सचमुच उसे लड़के की तरह रखने लगे । उनकी पत्नी माँ की तरह उसकी खबर लेने लगीं । दोनों स्त्री-पुरुषों

से भी अधिक सरस और सौन्दर्यमय बनाने लगी उस दम्पति को स्नेहमयी हँसमुख कन्या राधिका ।

सुन्दरलाल बहुत मामूली हैसियत के आदमी थे । उनके पास कोई ऐसा कारबार न था जो न किसी को वशीभूत कर जाता । उनका हृदय बड़ा विशाल था । उन्होंने किसी तरह चरन को पढ़ाकर एन्ट्रेन्स पास करा दिया । किन्तु उसका नतीजा भी न निकलने पाया कि वे अचानक स्वर्गवासी हो गये । उनके पीछे दिन बाद ही उनकी धर्मपत्नी भी चल बसीं ; किन्तु अन्त समय में अपने स्वामी की अन्तिम अभिलाषा पूरी कर गईं । चारपाई पर लेटे-लेटे ही उन्होंने चरन और राधा की अपने सामने ही भाँवरें फिरवा दीं । वह विवाह भी अनोखा था । उसमें बाजे नहीं बजे ; उत्सव नहीं हुआ । चरन भी रोता था राधा भी रोती थी, और सरस्वती राधा की स्नेहमयी माँ, मृत्यु-शैय्या पर पड़े पड़े कन्यादान कर रही थी । भाँवरों के कुछ पहर बाद उनकी अर्थी निकली । मालूम पड़ता है इसी कर्त्तव्य के लिए उनके प्राण शरीर में अटके रहे थे ।

[८]

जिस स्नेह और सौजन्य से जिस आशा और अभिलाषा से सरस्वती और सुन्दरलाल ने अपनी स्नेहमयी पुत्रिका उस भिखारी चरन को अर्पित की थी जीवन भर पूरी तरह से उसका आदर और मान करने में कुछ उठा नहीं रखा था उसकी उस अमूल्य विभूति को चरन ने भी सदा अपनी पलकों पर ही रखने में गौरव समझा ।

उसने भी हाथ खोलकर धनराशि खर्च की। मकान बनवाया। अपनी हृदयेश्वरी की एक-एक इच्छा को पूर्ण करने का सतत प्रयत्न किया। राधा सचमुच अपने प्रेम और लावण्य के कारण उसे उतनी प्यारी न थी जितनी सास ससुर की स्मृति के कारण। इसलिए आज जब वह नहीं है तो उसका संसार सूना हो गया है। कला और ध्यान उसके उस अभाव की पूर्ति नहीं कर पाते। गत जीवन की एक-एक स्मृति उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगा रही है।

खुशी में जब समय नहीं कटना चाहिए, तब वह चुपचाप खिसक जाता है इतने धीरे कि पता भी नहीं चलता पर दुःख में एक एक पल कटते कटते दुखिया की हजार बार मृत्यु हो चुकती है। गृह उदासी से भी घबरा उठता है। स्मृतियों से आँखें धुल जाती हैं। आज राधा को नहीं जान के समस्त सुखों की मृत्यु हो गई है और अब शायद इस जीवन में फिर कभी उसमें प्राण-रस प्रवाहित नहीं होगा।

विरोधी

उत्तर दक्षिण दिशाओं में जिस विरोध-भाव की व्यंजना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का निवास है, ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात बात पर जली-भुनी आंखों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

यह क्यों हुआ कैसे हुआ?—आदि बातों का उत्तर पूछो तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—वह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—धनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटा डाले। सबसे नहीं, केवल यही प्रार्थना की—हे देव! हे मधुसूदन! इस दस्यु को यहां से स्थानान्तरित कर सको तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

धनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में घन की तरह बजने लगा। मैं उसके पूरे नाम को सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम घृणानन्द रख

दिया । कृपानन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी । मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है । यही नहीं वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है । मैं उसे जितना ही दूर भागता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सांप आस्तीन में घुस आया ।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास खाली स्थान होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा । मैंने बूढ़े मास्टर की कांपती हुई गरदन को धन्यवाद दिया ।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों को परख लिया । मुझे भी देखा—सांप की तरह फुफकारते हुए । मैंने समझा उसने मुझे पहचान लिया । बात भी सच थी ।

मास्टर चले गये । खाने-पीने की छुट्टी हुई । सभी लड़कों से, वैसा उनका गठबन्धन हो गया । इतनी जल्दी ऐसा मेल-जोल ! मेरी भी गप्पें लड़ रही थीं ; लेकिन एक आंख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर ।

मैं उसे अपनी ओर फुफकारते हुए समझता रहा था वह मुझे मुस्कराते हुए ।

उस दिन यहीं तक हुआ । कृपानन्द छुट्टी के बाद घृणा और विद्वेष की आग जलाकर अपने घर चला गया । मैं अपने यहां चला आया और उसे सुरक्षित रखने का यत्न करने लगा ।

दूसरे दिन अप्रत्याशित चिनगारी ज्वालारूप में प्रकट हुई । मैं

विरोधी

उत्तर दक्षिण दिशाओं में जिस विरोध-भाव की सूचना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का विधान है ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात-बात पर जली-भुनी आँखों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

यह क्यों हुआ, कैसे हुआ?—आदि बातों का उत्तर पूछा तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—यह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—घनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटा डाले। सबसे यही, केवल यही प्रार्थना की—हे देव! हे शत्रुदमन! इस वस्तु को यहाँ से स्थानान्तरित कर सको तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

घनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में घन की तरह बजने लगा। मैं उसके पूरे नाम को सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम घृणानन्द रख

दिया । घृणानन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी । मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है । यही क्यों वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है । मैं उसे जितना ही दूर चाहता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि साँप आस्तीन में घुस आया ।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास खाली सीट होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा । मैंने बूढ़े मास्टर की कांपती हुई अक्ल को धन्यवाद दिया ।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों को परख लिया । मुझे भी देखा—साँप की तरह फुफकारते हुए । मैंने समझा, उसने मुझे पहचान लिया । बात भी सच थी ।

मास्टर चले गये । खाने-पीने की छुट्टी हुई । सभी लड़कों से जैसा उसका गठबन्धन हो गया । इतनी जल्दी ऐसा हेल-मेल । मेरी भी गप्पें लड़ रही थीं । लेकिन एक आँख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर ।

मैं उसे अपनी ओर फुफकारते हुए समझता रहा था, वह मुझे मुस्कराते हुए ।

उस दिन यहीं तक हुआ । घृणानन्द छुट्टी के बाद घृणा और विद्वेष की आग सुलगाकर अपने घर चला गया । मैं अपने यहाँ चला आया और उसे सुरक्षित रखने का यत्न करने लगा ।

दूसरे दिन भस्माच्छादित चिनगारी ज्वालास्वरूप में प्रकट हुई । मैं

विरोधी

उत्तर-दक्षिण दिशाओं में जिस विरोध-भाव की सूचना है, आकाश पाताल के बीच जिस अपरिसीम अन्तर का विधान है ठीक उसी भाव का हम दोनों के जीवन में योग था। मैं उसके हर काम को घृणा ईर्ष्या और द्वेष की दृष्टि से देखता। वह भी मेरी बात-बात पर जली-भुनी आँखों से अग्निवर्षा करने में ही सन्तोष पाता।

यह क्यों हुआ, कैसे हुआ ?—आदि बातों का उत्तर पूछो तो कुछ भी नहीं। मैंने उसे पहली बार स्कूल में देखा, लड़कों से सुना—वह पढ़ने आया है। किसी ने उसका नाम लिया—धनानन्द।

मेरे मन में न जाने क्यों देखते ही उसके प्रति अनन्त घृणा का समुद्र उमड़ पड़ा। मैंने अपने तमाम उपास्य देवों के द्वार खटखटाये। सबसे यही, केवल यही प्रार्थना की—हे देव ! हे शत्रुदमन ! इस दस्यु को यहाँ से लोकान्तरित कर सको तो माता वसुन्धरा का भार बहुत कुछ हल्का हो जाय।

धनानन्द के नाम का प्रत्येक अक्षर मेरे कानों में बम की तरह बजने लगा। मैं उसके असल नाम को सह न सका। मैंने उसमें थोड़ा परिवर्तन कर देना आवश्यक समझा। मैंने उसका नाम घृणानन्द रख

लिया । पृथ्वानन्द के प्रति मेरी घृणा और ईर्ष्या और भी प्रबल हो उठी । मुझे मालूम हुआ कि वह स्कूल में भर्ती हो गया है । वही क्यों वह मेरे दर्जे ही में, मेरे ही सेक्शन में लिया गया है । मैं उसे जितना ही दूर चाहता था वह उतना ही मेरे पास आकर लिपट गया । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सांप आस्तीन में घुस आया ।

खैर इतनी हुई कि मेरे पास खाली सीट होने पर भी मास्टर ने उसे मुझसे दूर ही रक्खा । मैंने बूढ़े मास्टर की कांपती हुई मक्स को धन्यवाद दिया ।

उसने इधर से उधर दृष्टि दौड़ाकर कुछ देर में कमरे की सारी मूर्तियों का परख लिया । मुझे भी देखा—सांप की तरह फुफकारते हुए। मैंने समझा, उसने मुझे पहचान लिया । बात भी सच थी ।

मास्टर चले गये । खाने-पीने की छुट्टी हुई । सभी लड़कों से वैसा उसका गठबन्धन हो गया । इतनी जल्दी ऐसा देख-मेल ! मरी भी गर्मे लड रही थीं ; लेकिन एक आंख और एक कान उसी की ओर लगे थे और शायद उसके मेरी ओर ।

मैं उसे अपनी ओर घुघ्घकारते हुए समझता रहा था, वह मुझे गुरराते हुए ।

उस दिन यहीं तक हुआ । पृथ्वानन्द छुट्टी के बाद घृणा और विद्वेष की आग जलाकर अपने घर चला गया । मैं अपनी आग लिए चला आया और उसे सुरक्षित रखने का यत्न करने लगा ।

दूसरे दिन भस्माच्छादित चिनगारी अग्निस्वरूप में प्रकट हुई । मैं

पढ़ रहा था । मास्टर ने कोई प्रश्न पूछ लिया । मुझे न आया । मैं चुपचाप खड़ा था । पृथ्वानन्द ने झट से हाथ ऊँचा कर दिया । मेरे शरीर में एक सिरे से दूसरे सिरे तक कड़वा विष भर गया । मैंने कड़ी से कड़ी नजर से उसकी ओर देखा ।

शाम को खेल हुआ । उसमें भी हम दोनों का स्पष्ट विरोध-भाव देख पड़ा । बात-बात में विरोध था—कहा तीव्र और अनुचित । वह मेरे हरएक प्रस्ताव को उलटने में कसर नहीं छोड़ता । मैं भी उसकी कोई बात मानने नहीं देता ।

मेरे जीवन का सारा रस विष हो गया था और शायद उसका भी ।

[ग]

मेरे स्कूल के दो संस्थान थे । कुल सत्तर लड़के होंगे । मैं सबसे तेज था । कभी किसी ने मुझे किसी विषय में परास्त नहीं कर पाया था । मुझे और मेरे मास्टर लोगों को मेरी प्रतिभा और कुशाग्रबुद्धि का गर्व था । अभी तक वह गर्व हिमाचल की तरह दृढ़ और अचल बना आ रहा था ; पृथ्वानन्द ने आकर उसे भी हिला दिया । ऐसा दृढ़ ऐसा मेहनती और ऐसा खिलाड़ी कोई लड़का शायद मास्टरों की याद में भी भर्ती न हुआ था । मेरी चपलामुखी प्रतिभा जब कई बार उसके सामने कुण्ठित हुई तो मेरी आँखें खुलीं । मास्टरों की उसके ऊपर कृपा बढ़ने लगी । मेरा उसके प्रति रोष उद्वेलित होने लगा ।

इतना तेज होने पर भी किताबों में जी न लगाने की मैंने कसम खाई थी। जरूरत भी नहीं थी फुरसत भी नहीं थी। कुछ लापरवाही थी, कुछ बचपन था—और कुछ थे मन के आनन्द और विनोद। ज्ञान-संचय के लिए नहीं, पूर्णानन्द के लिये समस्त विश्व की घृणा उत्पादन करने की खातिर मैं अपनी समस्त शक्ति से पढ़ाई में लग गया।

घर के लोगों का ताज्जुब था। भाई को मेरे न पढ़ने की सदा शिकायत थी वे प्रसन्न हो गये। मां को मेरी तन्दुरुस्ती की चिन्ता सताने लगी। बार-बार बाबूजी के सामने मेरी लगन की चर्चा चलाकर बात को अच्छी तरह प्रसिद्ध कर दिया। केवल नई भाभी ने मेरे इस नये कार्यक्रम का पसन्द नहीं किया। जरा हँसने बोलने का सुयोग था, वह भी गया।

मैं अपने काम में लगा रहा। भूगोल विज्ञान और गणित इन विषयों पर विजय सान पड़ती थी। शेष विषयों में अभी मैंने पूर्णानन्द का आधिपत्य नहीं माना था लेकिन फिर भी मेहनत हरएक में करता रहा।

शहर में प्रसिद्ध राममूर्ति का सर्कस आया। बाबूजी ने कहा, माँ ने कहा पर मैं नहीं गया। भाभी का भी अनुरोध नहीं माना। भाई और बकस की श्यामा-सुन्दरी लड़कियाँ लाकर देख आईं। उस समय मैं शिक्षा में तल्लीन था। हमारी इम्तहान का बीस दिन से भी कम समय रह गया था।

दूसरे दिन सुना पूर्णानन्द सर्कस देख आया है। वह कक्षा में खूब लम्बी-चौड़ी छोड़ रहा था। इन दिनों मैंने गानों में शरीक होना भी

छोड़ दिया था लेकिन कृष्णानन्द शायद बराबर भाग लेता था। उसकी बड़ी ही दिलचस्पी थी, बड़ी रफ्तार भी।

मैं कहता था—ठीक है, लेकिन नतीजे के वक्त मालूम पड़ा, कि अवश्य ही वह भी मेरे लिए यही कहता रहा होगा। मेरी उसकी भाषाओं में भेद था—उसकी उर्दू थी मेरी हिन्दी। विज्ञान भूगोल और गणित में उसके नम्बर अधिक आये; लेकिन टोटल मेरा बढ़ गया। गौरव रह गया, ऐसा मैंने समझ लिया। हिन्दी के पंडितजी को धन्यवाद दिया।

गणित और विज्ञान पढ़ानेवाले मास्टर पढ़ाते थे और भूगोल एक अमेरिकन। वालों ने मुझसे पूछा—क्यों जी तुमको क्या हो गया था?

'मुझको तो कुछ भी नहीं हो गया था। पहले से हर एक पर्चा अच्छा ही किया था। पर कृष्णानन्द इससे भी अच्छा करेगा इसका मज़ा मुझे क्या पता था!' यही सोचकर मैं चुप रह गया।

[दस]

जीवन में मेरी टक्कर उसे छोड़कर और किसी से नहीं हुई। इसका कारण पूर्वजन्म के किसी संस्कार के सिवा और क्या हो सकता है। जो लोग इस विश्वास के कायल नहीं, वे कोई दूसरा कारण भी समझ सकते हैं।

हम दोनों ने हाई स्कूल साथ-साथ पास किया। जो डिवीज़न मैंने पाया, वही उसे पाने का क्या अधिकार था? लेकिन उसने वही पाया। स्कूल

में साथ साथ कॉलेज में साथ-साथ, सभा-सोसायटी में साथ साथ लेकिन दोनों एक दूसरे के कट्टर विरोधी और प्रबल शत्रु। भावीकुमार सभा, फुटबाल, हाकी के मैदान, उत्सवों के रंगमंच और डिबेटिंग-क्लब हम दोनों के हौसले निकालने के स्थल थे। कहीं मार-धाड़कर, कहीं गालियों की बौछार कर और कहीं प्रतिभा और विद्वत्ता से एक दूसरे को परास्त कर नीचा दिखाना चाहते थे। ड्रामा में शाइलाक बनकर मैं सचमुच ही एन्टोनियो (पुष्पानन्द) का एक पौंड मांस काट लेने की घृणित चेष्टा से तड़प उठता। पोर्शिया का अभिनय और तर्कपटुता उतनी हृदयहारिणी न होती, तो मैं नाटक को सत्य घटना में परिणत कर देता।

पोर्शिया पाठकों के लिए नई चीज नहीं है।

पहले श्यामा और कृष्णा लड़कियों का जिक्र हुआ है। दोनों मेरे पड़ोस में पैदा हुई हैं—बड़ी हुई हैं। अब दोनों ही कालेज में पढ़ती हैं। श्यामा उद्दण्ड है और कृष्णा अल्हड़। मैं अभी से कृष्णा पर अपना एक विशेष अधिकार मान बैठा हूँ। कृष्णा का पोर्शिया का अभिनय विख्यात है।

दोनों बहनों के ओफीलिया और रोजालिंड के अभिनय भी सफल हैं। पर मुझे कृष्णा का रोजालिंड बनना उतना नहीं भाता। क्योंकि तब पुष्पानन्द ऑरलैण्डो बनकर रस में विष घोल देता है। उस समय जी चाहता है उठकर प्रलय मचा दूँ। कृष्णा मेरे मुँह से तारीफ के दो शब्दों के लिए कई बार सिर पटक चुकी है। पर मैंने परवाह नहीं की। वह मेरे रुख को जानती है। इसीसे चुप रहती है।

घरवालों को मेरे ग्रेजुएट होने की इन्तजारी थी। वह भी मैं हो

गया। तब या शीघ्र ही कृष्णा मुझे मिल जायगी। अचानक पाँसा पलट गया। गुरु पुष्पानन्द शुरू से मेरे लक्ष्य पर निशाना मारने का अभ्यास कर रहा था लेकिन वह इतना बड़ा जालसाज है यह भरोसा न था। कृष्णा के पिता उसके दूरस्थ संबन्धी थे। बस, उन्हीं के जरिये वह बाजी मार गया। कृष्णा उसके लिए, सुना, रुक गई। शीघ्र ही पैंतालीस दिन के अन्दर बड़ी धूम-धाम से ब्याह हो गया। कृष्णा ने मुझे भी निमंत्रण दिया था पर मैं जाता क्या रोने के लिए! ऐसा भाव कभी ज्ञात न था। अभिलाषाएँ इच्छाएँ और कामनाएँ सभी मृत हो गईं। लेकिन पुष्पानन्द की यह विजय चुनौती थी। मैं सब कुछ सहन कर सकता था लेकिन चुनौती नहीं।

कृष्णा की पराधीन और चपल मनोवृत्ति ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मैंने थोड़े-से अन्तराल के उपरान्त चिरकुमार रहने का दृढ़ संकल्प कर लिया। उस समय मुझे प्रतीत हुआ कि मैंने पुष्पानन्द की विजय पर भी विजय पा ली है। इस तरह सहज ही समय मेरा भाव पुर गया।

[चार]

ऐसी भीषण प्रतिज्ञा कर लेने के बाद मुझे लौकिक क्या वैभव की परवाह नहीं होनी चाहिए थी। पर ऐसा कहाँ हुआ। पूरे परिश्रम, पूरी तेजी और चौगुने साहस के साथ मैं एम० ए०, एल-एल० बी० करने में लग गया। मुझे तो अपने चिर-शत्रु से अब अच्छी तरह बदला लेना था। वह भी अभी तक मेरे कदम-से-कदम मिलाकर चला आ रहा था।

कृष्णा को पाकर उसका भाग्य चमक गया था पर मेरा भाग्य उसे खोकर एक अपूर्व प्रकाश से देदीप्यमान होनेवाला था। दोनों ने एक ही हॉल (कमरे) में बैठकर इम्तहान के पर्चे किये लेकिन दोनों की विचारधाराएँ विपरीत दिशाओं की ओर चल कर करती हुई प्रमुख रूप से बही चली आ रही थीं। मुझे उसकी खबर थी, उसकी पढ़ाई की इतिश्री बही थी। उसके पैरों में गृहस्थी का बन्धन पड़ा था। वह पालतू कबूतर था। ममत्व को छोड़कर शून्य-लोक गगन में चपल विचरने की उसे स्वतन्त्रता न थी। मैं था निर्द्वन्द्व स्वाधीन और स्वच्छन्दगामी। उन्मुक्त विशाल विराट गगन मेरी क्रीड़ास्थली था। मुझे रोकनेवाला कोई न था। मेरे ऊपर किसी का अंकुश न था। उसके संकुचित और सीमा-बद्ध अभ्युदय को अपने अनन्त अपरिसीम विकास के सामने नगण्य मानकर मेरा मन अपूर्व आह्लाद से आलोकित हो रहा था। वह शुभ दिन किस मुहूर्त में आये, बस इसी की आतुर प्रतीक्षा में मेरी घड़ियाँ बीत रही थीं।

दोनों ने साथ-साथ एल-एल० बी० प्रथम श्रेणी में पास किया। यहां तक दोनों राहियों का स्वर एक ही तार में बोल रहा था। अब कार्यक्षेत्र होने में देर न थी। शीघ्र ही एक विभाजक रेखा दोनों के उर रच, दोनों के जीवन के राजमार्ग अपने हिसे से निर्माण करने जा रही थी।

मेरी विलायत-यात्रा को अब उँगलियों पर गिने जाने लायक दिन रह गये थे। कृष्णानन्द को वकालत शुरू करने में शायद उससे भी कम समय था। मैं पंख बढ़ाने को तैयार था। पर ... था। वह अपनी का स्वागत करने जा रहा था पर गीदड़-सा दबा दबा और संकुचित सा।

अब तो पंखों की देर थी लेकिन यह क्या ! अकस्मात यह कैसा वज्रपात ! कैसा प्रलय !! पूर्णानन्द नहीं मेरा दुश्मन नहीं, मेरा प्रतिद्वन्द्वी नहीं जीवन में जागृति और स्फूर्ति फूँकनेवाला, मेरा सच्चा सहचर नहीं। स्तब्ध हो गया, आश्चर्य हो गया ! वह अचानक चन्द घड़ों में नहीं रहा ! नहा-धोकर पूजा करने के लिए कुशासन पर बैठा था। गंगा-जल लेकर आचमन करते ही गिर पड़ा। सेकण्डों में हृदय की गति रुक गई—उसका हार्ट फेल हो गया।

नौ साल साथ-साथ रहकर जिसे कभी करीब से अच्छी तरह नहीं देखा था विधाता की विडंबना, आज उसे मैं अपने कन्धे पर ले जा रहा हूँ। मेरी तृष्णा मेरी प्यार की हुई असमाप्त चीज कुंठित, व्यथित, अपेक्षित होकर धूल के मोल हो गई है !

पूर्णानन्द नहीं रहा। मेरी विकासोन्मुख-धारा भी रुक गई। मेरा अभ्युदय स्थिर हो गया। जोश और निरलस साहस के सारे स्रोत अवरुद्ध हो गये।

देखता हूँ मेरे दुश्मन और प्रतिस्पर्धी ने अपनी अवांछित उपस्थिति से मेरा जोश कुछ हरण करके मुझे बहुत कुछ दे दिया था और अब जाकर तो सभी कुछ ले गया है। इस जीवन में क्या मैं कुछ कर सकूँगा !—कभी नहीं।

वन्दी

चारों तरफ नीला जल नीले आकाश में मिल गया था। पर्वत श्रेणियों की तरह मुँह उठाकर लहरें उठती और लय हो जाती थीं। वह क्षितिज के उस पार, अनन्त दूरी तक फैला हुआ महासागर था। उस अथाह जलराशि के बीच एक छोटा-सा द्वीप चट्टानों के सहारे खड़ा था। लहरों के उद्दण्ड प्रयत्न को विफल करने के लिये ही मानो दृढ़ता उसकी रग-रग में भरी थी।

वहीं तट से टकरानेवाली फेनिल लहरों का पैर से स्पर्श करता हुआ, उन्नत-ललाट एक युवक बैठा था। वह बन्दी था—निर्वासित था।

वायु का झोंका उसके लम्बे बालों को लहराकर चला गया। पानी का रेला आया और चुप-से उसके आधे शरीर में लगकर लौट गया। एकाएक उसकी आँखें तन गईं। उसने पैर से महासागर को ठुकराकर कहा—इतना गर्व! जानता नहीं तुम, मैंने विशाल साम्राज्य का सुर बोम्बर बनाना सोचा था। और अब!

उसकी आँखें आप ही आप झुक गईं; क्योंकि वह बन्दी था।

[दो]

उस निर्जन द्वीप में कितनी रातें आईं और गईं। चन्द्रमा

निकला तारे डूबे, अंधेरा गहरा हुआ, सूर्य की रोशनी फैली, लेकिन बन्दो के हृदय में वह उत्साह दिखाई न दिया। उसकी नीली आँखों में फिर कभी वह चमक नज़र न आई। उसकी स्मृति के सामने सदा निराशा का परदा पड़ा प्रतीत होता था। उसकी हरएक हरकत में दीनता के भाव झलकते थे।

मुक्त गगन में समुद्री पक्षी उड़ता, तो वह चुपचाप बैठकर सिर झुका लेता। पहाड़ी बकरा उछलकर जब पहाड़ी की चोटी पर जाकर तिरछी नज़र से उसकी ओर ताकता तो वह चुपचाप अपनी दीनता स्वीकार कर लेता। समुद्र-गर्जन सुनकर उसका कलेजा काँप जाता था। उसके स्वप्नों का महल ढह चुका था। अतीत की हलचल एक धुंधली-सी याद रह गई थी। वर्तमान सामने पड़ा था और भविष्य इतना अनिश्चित और जटिल था कि उसके सुलझाने में मन लगता ही न था।

[तीन]

रात काली थी। समुद्र में तूफ़ान था। लहरें आकाश को छूती थीं। प्रलय — अभी अभी दो मिनट में प्रलय होने वाला था।

बन्दो गहरी निद्रा में गुफा के द्वार पर लेटा हुआ था। उसके नीचे ज़मीन हिलती थी ऊपर आसमान चक्कर काट रहा था।

उसने देखा—महासागर को चुनौती देकर वह कूद पड़ा । झटका देकर बेड़ियां तोड़ दीं । अनन्त जल-राशि को क्षण भर में चीरकर वह किनारे आ खड़ा हुआ । उसके सिर पर राष्ट्रीय-झंडा लहराता था । किले उसके पैरों के पास पड़े थे । असंख्य सेना उसका बिगुल सुनने के लिये तैयार थी । उसका हृदय उछल रहा था । तलवार कमर में लटक रही थी । चारों तरफ बैण्ड बज रहा था । उसका जयनाद आकाश में गूँज रहा था ।

उसने इस विपुल वाहिनी का अच्छी तरह निरीक्षण किया । एक बार झंडे को भर देखा और कहा—दोस्तो ! इस झंडे के नीचे एक विशाल साम्राज्य कायम होगा । दुनिया ने कभी जिसका ख्वाब नहीं देखा था उतना बड़ा । ये सब सब महासागर तुम्हारे घर के तालाब होंगे । तुम इनकी लहरों पर शासन करोगे । तुम्हारी आंख के इशारे पर दुनियाँ चलेगी ।

समस्त सभा ने झंडे के आगे सिर झुकाया और सम्राट् के जयकार से आकाश हिल उठा ।

सभा 'मार्च' करने को तय्यार खड़ी थी । किले की फसील पर तोप रक्खी थी । उसके छूटने के साथ ही कूच होनेवाला था । यकायक भयंकर शब्द हुआ । बन्दी उछलकर चट्टान पर खड़ा हो गया । पैरों की बेड़ियां बज उठीं । सामने के दरख्त टूटकर भयंकर शब्द के साथ गिर पड़े । वह अपनी सेना को आखिरी हुक्म देने के लिये दौड़ा ; पर चारों ओर सिवा समुद्र की ऊँची ऊँची लहरों के और कुछ

म था।

वह दिल को मसोसकर बैठ गया; क्योंकि वह बन्दी था।

तारा

भाभी ने जब हँसते हुए मिठाई तलब की, तो मैं उनकी बात नहीं समझ सका, पर—'पास कर आने दो तब चाहे जितनी मिठाई ले लेना'—कह कर हैंडबैग जमीन पर रख दिया और नौकर को बाहर से असबाब लाने का इशारा करके मैं ऊपर कोठे पर जाने लगा। मैंने सुना नहीं, भाभी ने फिर कुछ कहा—पर जब घूमकर देखा तो वे हँस रही थी और तारा उन्हें रोक रही थी। उस समय तारा के लजीले नैनों के भाव को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि मैं बात को नहीं समझ सका हूँ—पर मैं कोठे पर ही चला गया।

आई० सी० एस० परीक्षा में सम्मिलित होकर मैं लखनऊ से लौटा था। गत वर्ष एम० ए० फाइनल का इम्तहान दिया था उसके तेरहवें दिन मेरा गौना हुआ था, तब से तारा केवल एक बार पन्द्रह दिनों के लिए अपने घर गई थी। नहीं तो उसे बराबर यहीं रहना पड़ा था। मैंने भी साल के कई महीने घर पर ही बिताये थे; लेकिन परीक्षा के एक महीने पहले मैं कुछ सोच समझ कर प्रयाग चला गया था। उस दिन मुझे पहली बार

मालूम पड़ा था कि हर महीने में दस दस रुपए पर घर भी अवसर रूप से मैं तारा के कितने समीप पहुंच गया हूं और उससे अलग रहना अब मेरे जीवन की कितनी बड़ी अपूर्णता है।

लेकिन मैं चला आया क्योंकि इम्तहान के लिए तैयार होना था। यद्यपि मुझे इसकी उतनी चिन्ता नहीं थी जितनी कि मेरे भाई साहब को। उन्हीं के सिर तमाम गृहस्थी का बोझ था इसीलिये मेरे भविष्य और परिवार की आवश्यकताओं को वे ही अधिक समझते थे। उन्होंने मुझे घर छोड़ देने की आज्ञा दी थी। मैंने इच्छा न रहने पर भी, उनकी आज्ञा का पालन किया।

जब मैं घर से चलने लगा था तारा किवाड़ का सहारे चुपचाप खड़ी थी। मैंने भी उस समय उससे कुछ कहना उचित नहीं समझा पर द्वार के बाहर पैर रखने से पहले एक बार मेरी आंखें अनायास उस ओर चली गईं। जो कुछ देखा कहा नहीं जा सकता। वह व्यग्रता का भाव। न समझ सका उसका संदेश एक क्षण भी था प्रसरता मेरे दिल में समा सा गई। एक सकिण्ड में उन आंखों ने जो कुछ कह दिया उसी की मीमांसा गाड़ी में बार-बार मैंने करनी आरम्भ की और निश्चय कर लिया कि अपनी प्यारी तारा को बहुत जल्द अपने साथ रखने का इन्तजाम कर लूंगा। अब उसे इस तरह वियोग का दुःख न होने पायेगा जहां कहीं जाऊंगा वह मेरे साथ जायेगी। वह किसी को प्यार करती है यही तो एक महत्ता है। उसके लिये मैं मानव न मरने दूंगा। जब मैं उसका चाहा और लोग उसका चाहा नहीं। यह हमें अपनी मनोवृत्ति पर रखना भी अधिकार

नहीं। मुझे विश्वास है जब मैं भाभी से कहूँगा कि वे अपने तीन लड़के लड़कियों को अपने पास रक्खें और किशोरी को तारा के साथ भेज दें तो वे मान लेंगी। बस फिर तो तारा प्रसन्न ही रहेगी। यही सोचते हुए मैं प्रयाग पहुँच गया। वहाँ भी इम्तिहान के दिन तक मैं तारा की आँखों की वे बड़ी-बड़ी बूँदें न भूल सका। मैं उसको समझा करके बेचैन हो रहा था। मैंने दो तीन पत्र भी लिखे थे पर किसी का उत्तर नहीं मिला। इससे और भी चिंता थी। कभी-कभी मैं सोचता था कि अब की बार तारा सचमुच रूठ गई है। यह अनुमान इसलिए और भी दृढ़ होता जा रहा था कि मैं चलते समय जानबूझकर उससे नहीं बोला था। इम्तहान के दूसरे दिन मुझे तारा का लिफाफा मिला। उसे पढ़कर तसल्ली हुई और गर्व भी हुआ। मैं उसे केवल प्रेम की मूर्ति सरलता का प्रतिरूप और एक अबोध बालिका ही समझता था जो लज्जा के मारे सहम कर दबी जा रही हो। लेकिन उसकी व्यवहार कुशलता और भावी-जीवन की महत्त्वपूर्ण आशाओं का मुझे उसी दिन पता चला। यदि मैं पहले से जानता तो मेरा पथ और भी प्रशस्त हो जाता। उसने लिखा था—भविष्य जीवन के सच्चे सुख के लिए मेरा मौन रहना ही अच्छा है। क्योंकि उमंगों को मैं जबरन दबाए हुए हूँ और इन्हें दबाना ही होगा। इम्तहान देकर जब घर आओगे तब मैं अच्छी तरह बताऊँगी कि मैं मान नहीं करती। सच्चा प्रेम ही हमारे जीवन का पथ है।

पत्र यही लाइनें बराबर पढ़ता हुआ मैं लखनऊ गया। कुछ ऐसी लगन लग गई थी जो जीवन की उभारनी शक्ति-सी हो सकती है।

उसी अमित उत्साह में मैंने एक एक प्रश्नपत्र किया था। वैसे मैं इम्तहान के बाद एक-दो हफ्ते मित्रों के साथ सदा ही बिताता था, लेकिन अब की मेरे जीवन की बदली हुई हालत ने तुरन्त ही घर जाने को मजबूर कर दिया। जब मैं वहाँ से चल दिया रास्ते में कई बार तबीयत तबियत हुई कि बीच में ही उतर पड़ूं। वहीं तो भाभी मेरा खूब ही मजाक बनाएँगी। बन्धु-बान्धव पैगाम आदि जब फब्तियाँ कसेंगे तो मैं क्या उत्तर दूंगा ! इसके अलावा तारा बेचारी को भी कम बातें नहीं सुननी पड़ेंगी। मेरी व्यग्रता से उसे मुहल्ले भर की लड़कियाँ छका मारेंगी। पर यह सब कुछ सोचते हुये भी मैं चला आया और घर में पैर रखते ही भाभी ने जब वही उपक्रम किया तो मैं मन ही मन करता हुआ अपने कमरे में चला गया। कपड़े उतारकर बाहर भाई साहब के पास जाकर उन्हें इम्तहान का हाल बताने लगा।

उसी दिन नहीं उसी रात का जब दीपक की जलती हुई लौ पर गिरकर पतिंगे निस्वार्थ प्रेम की रागिनी गा रहे थे और तारा मेरे पास बैठी अपरिचित भाव से उसका जलने में तन्मय हो रही थी उसके जिज्ञासापूर्ण नेत्रों में उस रहस्य के लिए कई प्रश्न थे उस विह्वल आत्मा के लिए अनन्त कौतूहल था और हृदयस्थ समवेदना के लिये उसके सुन्दर नैनों में दो बड़े-बड़े आंसू। जीवन की सबसे अमूल्य निधि ऐसे आँसुओं की बूंदें ही होती हैं जो स्वर्गीय अनुभूति का प्रकाशित कर रही हों। मैंने अचानक उसकी आँखों का ।

आँसुओं की बूंदें गालों पर बिखर गईं और अनुराग रंजित

होठ मुस्कराहट की मधुर आभा से खिल उठे। मैंने उस पर अपने प्रेम की मुहर लगा दी। उस समय उसने मुझे रोकते हुए कहा—ठहरो भी, देखो तो बेचारा पतिंगा अभी-अभी जल मरा है और यह दूसरा भी वहीं जा रहा है।

मैंने कहा—जाने दो। वह प्रेम करता है।

वह पतिंगों का दीपक पर बारबार गिरना देखते हुए बोली—वह प्रेम करता है—अपना प्राण देकर—मैं भी तो तुम से प्रेम करती हूँ। पर मेरा प्रेम इसके प्रेम के सामने कितना क्षुद्र है। क्या मानवीय प्रेम में ऐसा आदर्श-उत्सर्ग संभव नहीं?—मैं इसे जीवन के इस मार्ग को अपरिसीम अभिलाषाओं के साथ ग्रहण किये जा रही हूँ। गुलामी में मुझे और तुम्हें क्या आनन्द मिलेगा?

मैंने कहा—अज्ञात और अशान्त प्रदर्शन करनेवाले मानवीय प्रेम के जो आदर्श दिखाई देते हैं, वे भी अवहेलनीय नहीं।

वह कुछ और भी कहना चाहती थी पर मैं बीच ही में पूछ उठा—भाभी क्या कहती थीं तारा?

उसकी सूरत पर लज्जा की लालिमा छा आ गई। और उसने सकुचाते हुए कहा—वे ही जानें—आज तुमने तो वादा कर लिया है।

पर जवाब तो मिल गया। मैंने कुछ-कुछ अनुमान किया। वह ऐसी बात है जिसे वह अभी बताना नहीं चाहती।

दूसरे दिन तारा परोस रही थी, और मैं शिवाजी के साथ खाना खा रहा था तब भाभी ने मुस्कराकर कहा—लाला जी, इस तरह काम नहीं

क्षमा कर देगी । अन्त में हम दोनों का इस बार सच्चा प्रसन्न मिलन अवश्य होगा ।

निरुद्देश्य

छुट्टी का दिन था और मजे की मस्ती बहार। मैं घर से निकला निरुद्देश्य। टहलकर जरा बाहर सड़क पर गया। फिर घूमकर गली में आया। एक मित्र को पुकारा। जरा हंसा, मस्का। वह बोले—"आओ बैठो कुछ काम की बातें हों।"

मैंने कहा—'काम के लिए इतने के और दिन हैं। आज तो मस्ताने दो यार।

"अच्छी बात है।

फिर फुर्सत हुई। पान चबे, ताशें पाये। मित्रों का एक दूसरा झोंका आया। मैं कटी पतंग की तरह उसी तरफ को उड़ गया। बड़ा मजा रहा। खूब गपशप हुई। दुपहरी को एक नींद सो गया था। वह हरारत सब दूर हुई।

शहर के मोटरवालों की जगह आजकल साइकिलवालों ने ली है। जिधर देखो, हाथ में हैंडिल पकड़े हवा में उड़े जा रहे हैं। मैंने पुकारकर कहा—"अजी ओ" ...!"

क्षमा कर देगी। अन्त में हम दोनों का इस बार सच्चा अमस्त मिलन अवश्य होगा।

निरुद्देश्य

छुट्टी का दिन था और मजे की बसंती बहार। मैं घर से निकला निरुद्देश्य। टहलकर जरा बाहर सड़क पर गया। फिर घूमकर गली में आया। एक मित्र को पुकारा। जरा हवा खाना। वह बोले—"आओ बैठो कुछ काम की बातें हों।"

मैंने कहा—'काम के लिए इतने हैं और दिन हैं। आज जी बहलाने दो यार।

"अच्छी बात है।

चलो फुर्सत हुई। पान चबे, ताशें आये। मित्रों का एक दूसरा झोंका आया। मैं कटी पतंग की तरह उसी तरफ को उड़ गया। बड़ा मजा रहा। खूब गपशप हुई। दुपहरी को एक नींद सो गया था। वह हरारत अब दूर हुई।

शहर के पटरीवालों की जगह आजकल साइकिलवालों ने ली है। जिधर देखो, हाथ में हैंडिल पकड़े हवा में उड़े जा रहे हैं। मैंने पुकारकर कहा—'आओ जी' ''।"

देखा रुक गये—उतर आये । मुस्कराकर बगैर पूछे ही कहा—चलो ये ही होस्टल की तरफ ।

मैंने बयान दाँत से काटकर पूछा—"मैं भी चल सकता हूँ ?"

"अवश्य !"

चाहा चलूं, पर रुक गया । एक साथ कई बाधाएं लग गईं । वह हँसकर चल दिये मैं रह गया । तब सूझा, घूमने की ठहरी । सब लोग चल पड़े । मेरे पैर में पुरानी चट्टी सिर की टोपी मसखरा पर घर जाने की फुर्सत कहां, और हजामत भी नहीं ।

साढ़े चार बज चुके थे । हल्की धूप हवा का आलिंगन करती हुई बुरी नहीं मालूम पड़ती थी । हरे हरे खेतों की छटा फूली सरसों का मस्तक भाव । नीरव, निर्जीव प्रकृति में सजीव कलित साकार सौंदर्य और अनंत संगीत मुग्धभाव से किसी अज्ञात अगोचर के चरणों में अपनी अंजलि अर्पित कर रहे थे ।

नहर की हरी हरी धीमी चुगते हुये हम लोग चले । लहरों को छूकर आते हुये अनिल और आपस के विनोद से पथ श्रम भी हल्का हो गया ।

गाँवों का रस सूख गया है । आजकल वहां क्या है ? वही दरिद्रता का नर्तन, वही विषाद का करुणालाप । लेकिन नदी के जिस कछार में हम जा रहे थे वहां प्रकृति का वैभव छूट रहा था । जी खुश हो गया मित्रों की चहचहाहट में मन मचलकर कहने लगा—एक कुटी बने । वहीं रहकर हम बहती हुई कविता को हृदय के पत्रों में बटोर लिया जाय ।

दूर चने के खेत से एक किसान के लड़के ने गाया— 'उड़ु अलबेली बुहारि धाउ आ गया । उड़ु । मालूम पड़ा सचमुच ही अलबेली प्रकृति मस्त पड़ी इठला रही है । बच्चे का कोमल भोला कंठ उस मधुर अतीम की ओर ठेल रहा है ।

[ख]

जहाँ कोई सड़क नहीं वहाँ नियम भी नहीं । अनियम चले । पूरब पश्चिम उत्तर-दक्खिन-आवाद ही कोई दिशा छूटी हो । किसी से पूछना सूझे या और कुछ बतलाना चाप । सभी चुपचाप अपनी-अपनी धुन में मस्तानी चाल से, चले जा रहे थे ।

नहर की झोंमी चुक गई । नहर की विस्तार-सीमा समाप्त हुई । इनी की संलग्नता को ठेस लगी । मोड़कर देखा—ओहो ! घर तो दूर छूट गया था ।

कोई राह नहीं, गलु किनारों पर चढ़ने लगे । पैर में चट्टी थी न । उसका पुराना तस्मा उखड़ गया । बड़ी आफत हुई । मित्र कहलानेवाले साथुओं में एक काकरे से मेरी परेशानी का स्वागत किया । सब करके आगे चला । दो कदम बाद ही एक भटकटैये पर पैर पड़ गया । काँटे चुभ गये । मैं उछल पड़ा फिर बैठकर उन्हें निकालने लगा । तबतक मित्र मंडली में आयुर्वेद का विचार उपस्थित हो गया । याद नहीं आता किन किन-रोगों के लिये भटकटैया के पौधे पत्ते और जड़, सब का उल्लेख होने लगा । काँटों से छुटी पाकर मैंने कुछ झुंझलाहट के साथ कहा—

मालूम पड़ता है, अब कल्पद्रुम की जगह इसी मायावीलता ने ली है ।

फक्कड़ों की तरह स्वच्छ मुस्कराहट को बेदर्दी से बिखेरते हुये किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ । पल भर समझ पड़ा धन्वन्तरि की विद्या के जो कुछ पन्ने आ गये थे वे सब इन्हीं लोगों ने बरामद कर लिये हैं । जब विषय ही छिड़ गया तो मलकरैशा ही क्यों मायफली, अकरकरा, धतूर और अमरबेल सभी बारी-बारी से आने लगे । सभी की सेवन-विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना अब अनायास के हाथ लगी । किसी ने मंजरी मसलकर काँटे चुभाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाथ चिपचिपा लिया । मेरी बारी आई । खूब ऐसा खूब बनाया । एक-एक की अच्छी तरह खबर ली । जो कुछ हो गया । सब लोग आगे बढ़ चले । रुके तो सिर्फ एक पनघट पर । गाँव की बहुएँ सशंकित हिरनियों की तरह घूँघट के भीतर से एक दूसरी का मुँह ताकने लगीं । पानी भरनेवाली ने पानी भरना रोक दिया । प्यास तो लगी थी शायद सभी को । पर किससे कहते । पनघट की प्रथा का मन-ही-मन आदर करते हुये चल पड़े । गाँव में प्रवेश किया ।

भड़भूँजे की दुकान मिली । हरे-हरे चना भूँजे जा रहे थे । शहर की टोली का भी स्वागत । कुछ पैसों के चने भुनाये गये । भोलीभाली सलोनी युवती ने नमक-मिर्च वगैरह पैसों के ही देकर उन्हें, उन दिनों की कृपणता के रेशमी धागे में बन्दी कर लिया । अगर आगे चलने की उत्कट उत्सुकता न होती, तो कुछ देर वहीं रुककर चने चबाये जाते ।

गाँव के दूसरे सिरे पर जाकर एक सत्संगी साधु की कुटी में विश्राम किया, जल पिया और की थोड़ी देर तक वेदान्त-चर्चा । चने

वर्णित के इस चक्र में विशाल वट के नीचे पक्षियों के घोंसलों की तरह, वह कुटिया थी। थोड़ी देर में समस्त विकार तिरोहित होकर अन्तःकरण स्वच्छ निर्मल हो गया।

[दो]

दिन अपने उजले धुले हुए वस्त्रों को समेट रहा था और संध्या धूमिल उत्तरीय को उतारकर फेंक रही थी। चलाचली का वक्त था। स्वच्छंद विहग अपने-अपने नीड़ों में आश्रय लेने जा रहे थे। हम लोग भी चले।

बाहर द्वार से चपरासी लौट पड़े थे। अपनी तो कह सकता हूँ मेरा हृदय अपनी मनोहरा पत्नी की व्याकुलतापूर्ण प्रतीक्षा का अनुमान कर बेचैन हो रहा था।

विनोदिनी पार्टी के सभी सज्जन अट्टहास मचाने के रंग में रंगे थे, सिर्फ महाशय रघुनाथचंद उर्फ मिस्टर जीनवान ही एक ऐसे थे जिन पर बुढ़ापे का उन्माद छाया पड़ चुका था। वह हम लोगों के नेता व मुखिया थे—हर बात में, हर काम में क्योंकि उनका दिल अभी तक पूरा स्वस्थ और जवान बना हुआ था। वे आगे-आगे कदम मार्च करते हुए चले। हम लोग मालगाड़ी के डब्बों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकाएक हादसा हो गया। मिस्टर जीनवान अपने समवयस्क किसी सज्जन से उलझ पड़े। राम-जुहार हुई। कुशल-क्षेम पूछी। आगन्तुक ने कहा—यहीं जा रहा हूँ। पान के पास वाटिका में तलब तो है न।

मिस्टर जीनवान ने गंभीरता से सिर हिला दिया। मालूम हुआ, जैसे

मालूम पड़ता है अब कल्पवृक्ष की जगह इसी मातुलिंग ने ली है।

मुक्तधारा की तरह स्वच्छ मुस्कराहट को बेदर्दी से बिखेरते हुये किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ। पलभर समझ पड़ा, धन्वन्तरि की विद्या के जो कुछ पन्ने खो गये थे वे सब इन्हीं लोगों ने बरामद कर लिये हैं। जब विषय ही छिड़ गया तो मलकरेला ही क्यों मामफली ऊटकटारा, धतूर और मदार की सभी बारी बारी से आने लगे। सभी की सेवन-विधि की शास्त्र-सम्मत विवेचना पथ्य अनोपान के साथ होने लगी। किसी ने मंजरी भजकर कांटे चुभाये, किसी ने फूल तोड़कर कड़वे दूध में हाथ चिपचिपा लिया। मेरी बारी आई। खूब हंसा खूब समझा। एक एक की अच्छी तरह खबर ली। जी खुश हो गया। सब लोग आगे बढ़ चले। रुके तो सिर्फ एक पनघट पर। गांव की बहुएं लज्जित छिपकली की तरह घूंघट के भीतर से एक दूसरी का मुंह ताकने लगीं। पानी भरनेवाली ने पानी भरना रोक दिया। प्यास तो लगी थी शायद सभी को; पर किससे कहते। घड़े की प्रथा को मन-ही-मन भांड़ करते हुये चल पड़े। गांव में प्रवेश किया।

मड़भूंजे की दुकान मिली। हरे-हरे अनाज भूंजे जा रहे थे। शहर की टोली का भी स्वागत। कुछ पैसों के चने भुनाये गये। भोलीभाली सलोनी युवती ने नमक-मिर्च बगैर पैसों के ही देकर हम खुशदिलों को कृतज्ञता के रेशमी धागे में बन्दी कर लिया। अगर आगे जाने की उत्कट उत्सुकता न होती तो कुछ देर वहीं बैठकर चने चबाये जाते।

गांव के दूसरे सिरे पर जाकर एक उदासी साधु की कुटी में विश्राम किया, जल लिया और की थोड़ी देर तक वेदान्त-चर्चा। चने

वर्गाश्व के आस पास में विशाल वट के नीचे पक्षियों के घोंसले की तरह, वह कुटिया थी। थोड़ी देर में समस्त विकार तिरोहित होकर अन्तःकरण स्वच्छ निर्मल हो गया।

[तीन]

दिन अपने उगते पूरे हुए घण्टों का समय रहा था और संध्या धूमिल उत्तरीय को उतारकर फेंक रही थी। चलाचली का वक्त था। स्वच्छंद विहग अपने अपने नीड़ों में आराम लेने जा रहे थे। हम लोग भी चले।

बाहर द्वार से चरवाहे लौट पड़े थे। अपनी तो कह सकता हूँ, मेरा हृदय अपनी मनोज्ञा पत्नी की आकुलतामयी प्रतीक्षा का अनुभव कर बेचैन हो रहा था।

विनोदिनी गोष्ठी के सभी सदस्य अल्हड़ जवानी के रंग में रंगे थे, सिर्फ महाशय आशुतोष उर्फ जीमतान ही एक ऐसे थे जिन पर बुढ़ापे का उत्थान साथ पड़ चुका था। वह हम लोगों के नेता थे बुजुर्ग थे—हर बात में, हर काम में; क्योंकि उनका दिल अभी तक पूर्ण स्वस्थ और जवान बना हुआ था। वे आगे आगे स्वयं मार्च करते हुए चले। लोग मालगाड़ी के डब्बों की तरह उनका अनुसरण करने लगे।

एकाएक हाल्ट हो गया। मिस्टर जीमतान अपने समवयस्क किसी सज्जन से उलझ पड़े। राम जुहार हुई। कुशल-क्षेम पूछी। आगन्तुक ने कहा—यहीं जा रहा हूँ। गाँव के पोस्ट आफिस में लड़की है न।

मिस्टर जीमतान ने गंभीरता से सिर हिलाया। मालूम हुआ जैसे

पर सब कुछ जानते हो।

शायद साथियों की दशा का उन्हें अनुमान था इसलिए फि
कहा—अच्छा आइए। बहुत दिनों से आपका चूरन चखने को नहीं मिला
किसी दिन मकान पर लाइएगा।

"हाँ-हाँ जरूर"—कहकर वे अपनी राह लगे और हम लोग
घर की तरफ मुड़े। मैंने मि० दीनदास से पूछा—यह कौन थे जिनकी
पेटी में चूरन था?

दीनदास—हाँ, इनका बड़ा मजेदार और बड़ा लम्बा किस्सा है।
बेचारे आजकल चूरन बेचते हैं।

एक साथी ने कहा—हाँ, हालत से मालूम पड़ता है, बड़े
गरीब हैं।

[चार]

घर पहुँचने में देर थी। मेरे आग्रह से दीनदास महाशय ने
किस्सा आरंभ किया कहा—बीस-बाईस बरस पहले यह कहीं से बदल कर
अपने यहाँ डाकखाने में आया था। उसी समय एक और बाबू भी आया।
दोनों ही परदेशी, दोनों ही न अकेले। मुहब्बत शुरू हुई। साथ ही साथ रहने
लगे—मित्र मित्र की तरह भाई भाई की तरह। पूरी भी साथ रहना भी
साथ ही, और झगड़ा भी साथ ही। मजा था—सिर्फ मजा।

कुछ दिन बाद दोनों अपनी-अपनी स्त्रियों को भी ले आये। एक
बड़ा-सा मकान लिया गया। ऊपर ऊपर के कमरे बाँट लिये सबने अपने-अपने।
जैसा पुरुषों में मेल था उससे अधिक स्त्रियों में हो गया। एक

ठी के बिना एक पल चैन न लेती । दोनों मित्र यह देख-देखकर मन-मन खुश होते, पुलकित और प्रसन्न होते थे । दोनों परिवारों को अपने पने पर भूल गये थे ।

कुछ दिनों बाद इन्होंने अपने मित्र और साथी को नवीन सृष्टि की सूचना पर बधाई दी । उन्होंने हँसकर कहा—आशा है, मुझे भी शीघ्र ही ऐसा अवसर मिलेगा । दोनों की श्रीमतियाँ सुन रही थीं । बड़ा तमाशा था । मन ही-मन खुश होकर भी दोनों ही अपने अपने पुरुष स्वामियों से रूठ गईं ।

इनके मित्र अपनी पत्नी का घर ले जा रहे थे । इनकी पत्नी की राय के मुताबिक इन्होंने रोक दिया कहा—अभी यहीं रहने दो । घर क्या है, यहीं सो सब कर लेगी ।

समय हो चुका था । अथवा दो-चार दिन में होने ही वाला था कि इनके तबादले का हुक्म आ गया । चौबीस घन्टे में ही इनको मंजिल पहुँच कर चार्ज लेना था । बड़ी आफत आ पड़ी । मित्र घबरा गये । मित्र की स्त्री अपनी असहाय दशा का अनुमान करके रो पड़ी ।

आखिर तय किया—कुछ दिन के लिए पत्नी को यहीं छोड़कर चले जायँ । मित्र ने आश्चर्य इनके चेहरे की तरफ देखा, दोनों ही मित्र लज्जित रह गये । मित्र की स्त्री ने तो अनेक धन्यवाद दिये ।

वह चल पड़े । इधर मित्र स्टेशन तक साथ जाकर इन्हें गाड़ी पर बिठा आये ।

आठ दस दिन बाद इन्हें अपनी स्त्री की चिट्ठी मिली—जीजी का

हाल बहुत खराब हो रहा है। अच्छा नहीं हो रहा है। मनोहर बाबू सोचते हैं, आपरेशन हो जाय। कहीं बीबी को कुछ हो न जाय। उनकी छुट्टी बची है।

उसी दिन थोड़ी देर बाद मिस्टर मनोहर बाबू का तार मिला—बीबी का स्वर्गवास हो गया। आपरेशन का कोई फल नहीं हुआ।

तीसरे दिन फिर भी की चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—तार मिल चुका होगा। बीबी की मृत्यु के कारण मेरा तो दिल टूट गया है। मनोहर बाबू का तो हाल बेहाल है। पिछले तीन दिनों से वे बेहोश पड़े हैं। आज कुछ-कुछ बुखार भी है। ईश्वर! क्या होना है?

वह बेचारे बड़ी आफत में पड़े। ऐसी दशा में भी को लेने कैसे पहुँचा जाय? अपने जाकर खर्च करने की सामर्थ्य नहीं। पत्र का उत्तर दे दिया। शीघ्र ही छुट्टी लेकर पहुँचने को लिख दिया।

आठ दिन बाद दरख्वास्त दी। छुट्टी मंजूर हुई लेकिन बड़े दिन की छुट्टियों के बाद। बात कितने ही दिनों को टल गई। पांच या सात जनवरी को रेल में सवार होकर यहां पहुँच गये। इक्का किया घर पर आ पहुँचे। घर पर में तो बड़ा सा ताला पड़ा था। पड़ोसियों से पूछने पर पता लगा। सब दवाखाने की तरफ भागे।

दवाखाने का भी कायाकल्प हो चुका था। सब नये-नये बाबू थे। पता किया उत्तर मिला—बाबू मनोहरलाल का तबादला हो गया है। तबादला भी नजदीक नहीं तीन सौ मील दूर। कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

सकी । शाम को मित्र घर चलने लगे, पूछा—चलोगे न ?

यह बगैर उत्तर दिये ही चल पड़े । मित्र ने अच्छा सा मकान किराये पर ले रक्खा था । पहुँचकर कुण्डी खटखटाई । दुमंजिले से छम छम की एक परिचित ध्वनि नीचे दरवाजे तक आकर रुक गई । किवाड़ खुल गये, पर कोई नजर न आया । चुपचाप कुण्डी खोलकर एक छाया घर के अन्दर छिप गई । पूरी तरह न देखकर भी इन्होंने पहचान लिया ।

बाहर बैठक में से नाम को ठहराकर मित्र अन्दर गये । दस-पन्द्रह, बीस-पच्चीस मिनट क्या एक घण्टे से अधिक हो गया, लेकिन कोई न आया ।

कमरा बिलकुल अन्धकारपूर्ण हो गया, पर कोई खबर होनेवाला नहीं । किसी तरह न रहा गया तो इन्होंने धीरे से अन्दर झांका । वहां भी कोई नहीं । साहस करके अन्दर प्रवेश किया । दालान को पारकर आंगन में आंगन से दूसरी दालान में फिर उसी तरह चुपके से जीने में चढ़ गये । ऊपर खुली छत पर पास-पास दोन कमरे थे । एक कमरे से रोशनी निकल कर छत पर फैल रही थी । दूसरा कमरा अंधेरा पड़ा था । उसी में घुस गये । किवाड़ की दराज में आंख लगाकर देखा—बढ़िया गुलाबी रेशमी साड़ी पहने इनकी पत्नी मित्र की गोद में बैठी थी । शायद आंसू बहा रही थी । मनोहरलाल अपने हाथों से उसके आंसू पोंछ रहा था ।

खाक सहते होंगे उस समय भी इनकी दशा । फिर भी बहादुर खड़ा ही रहा । मित्र ने स्त्री को बार-बार प्यार करके कहा—तुम डरती क्यों हो । मैं जाकर उन्हें चिट्ठी दिये देता हूँ । समझदार होंगे तो अभी चले

जायेंगे कहीं धर्मशाला में जाकर डेरा डालेंगे। जरूरत करेंगे,तो दो चार देकर निकाल दूंगा।

भय के कारण इनका शरीर कांपने लगा। इधर उधर कमरे में तलाश किया कुछ मिला नहीं। जी में आया खाली हाथ ही पहुँचकर दोनों के सिर लगाकर ऐसे जाय मारें और मर जायें लेकिन फिर कुछ सोचकर समझ गये। चुपचाप कांपते हुए बाहर निकल आये। जीने से होकर बैठक में पहुंच गये। सब असबाब वहीं छोड़कर सिर्फ एक लोटा लेकर निकल पड़े।

कई दिन बाद मनोहर बाबू ने एक पत्र छापकर अपनी नई श्री का दिया। आशीर्वाद पाकर उसका भी मर्दी हो गया।

[पांच]

जौहरलाल महाशय ने कहा—अब बाकी अपने घर जाना किसी और दिन सुनाएंगे। पर किसी ने न माना, ऐसी मजेदार कहानी सुनने के लिए सभी आतुर हो रहे थे। एक जगह उन्हें पकड़कर बिठा लिया गया।

जौहरलाल महाशय ने विवश होकर कहना शुरू किया—जो घर से एक लोटा लेकर निकलता है वह मोक्ष साधुओं में आ मिलता है। हिंदुस्तान में यह प्रथा बहुत पुरानी है। इन्होंने भी असमय में सन्यास धारण कर लिया। बस्तियों में जाना छोड़ दिया, मनुष्यों से मिलना छोड़ दिया। एकांत वनों में, निर्जन कछारों में रहकर आत्मा के लिए शांति की तलाश करने लगे। बड़ी तपश्चर्या में बीत गये। दूर बस्तियों में इनकी शोहरत हो गयी।

गृहस्थ स्त्री-पुरुष इनको पहुँचा हुआ महात्मा समझने लगे। इनके मुँह से आशीर्वाद के दो शब्द सुनने के लिए वे अपना सर्वस्व छोड़ने को तैयार थे। लेकिन इनके मन में शांति न थी, आत्मा अन्तर की अग्नि-ज्वाला से भस्मसात् हुई जा रही थी।

अंत में यही सोचकर वह व्यथित हो उठे कि किस अदृश्य शक्ति ने उस समय मेरे हाथों को जकड़ दिया था मेरी बुद्धि को कुण्ठित कर दिया था! मुझे चैन हो भी तो कैसे! वे दोनों आनन्द उड़ाते रहें और मैं अकर्मण्य बनकर आत्मानन्द में लीन होने की चेष्टा करूँ! नहीं, उनके आनन्द का आमूल उच्छेद किये बगैर मुझे शांति कहाँ!

विन्ध्याचल पर्वत का सघन अंचल छोड़कर एक दिन महात्माजी फिर लखनऊ शहर की तरफ चल पड़े। वृक्षाच्छादित कुल मसकन पर वही सम्पन्न था और भी वही ईर्ष्या मिली।

बाबू मनोहरलाल फिर पुराने दफ्तर में पहुँच गये थे; पुराना ही मकान किराये पर ले रखा था। इन कई बरसों में उनकी अच्छी तरक्की हो गई थी। एक लड़का और दो लड़कियाँ तीन संतानें थीं। गृहस्थी के सभी सुख उन्हें प्राप्त थे।

जब इन्होंने आकर यहीं बस्ती में अपनी धूनी रमाई, तो उपर्युक्त बातें शीघ्र ही मालूम हो गईं।

चार छः दिन में महात्मा के अनन्य वैराग्य की चारों तरफ चर्चा होने लगी। महात्माजी किसी की कोई सुनते न थे। हाँ, भक्ति भाव से पहुँच जाता, कोई-कोई भक्त सत्संग करता उसे आशीर्वाद दे देते। उनकी बहुत

की बातें तो अवश्य सत्य देखी जाती।

एक दिन गंगा के झुरमुटे में लड़के को गोद में लिए एक स्त्री दो लड़कियों के साथ आई। महात्माजी प्राणायाम कर रहे थे। स्त्री आकर चुपचाप बैठ गई। चंचल बालक लड़कों से मिल कर खेल पड़ा। महात्माजी की समाधि भंग हो गई। बड़ी देर तक एकटक लड़के लड़कियों की बालक्रीड़ा देखते रहे।

महात्माजी की समाधि खुलते देखकर स्त्री ने झुककर चरणों में सिर नवाया और पुलकित आर्द्र कंठ से कहा—महाराज मैं बड़ी पापिन हूं फिर भी इस जीवन में मैंने बड़े आनन्द उठाये हैं। सब इच्छाएं तो पूरी हो चुकीं, केवल एक शेष है। वह पूरी होगी कि नहीं, यही आपसे पूछने आई हूं।

महात्मा ने सिर हिला दिया। वह स्त्री को अभी तक पहचान न सके थे। स्त्री ने उसी तरह सजल नेत्र अतीत जीवन की सारी कथा सुनाकर पूछा—भगवन्, मेरे स्वामी उसी समय, उसी अंधेरी रात में चले गये। लाज के आवरण ने मुझे इतना जकड़ रक्खा था कि मैं कुछ न कर सकी। तीसरे दिन उनका पत्र आया। उसमें उन्होंने मेरे गर्भस्थ बाल सन्तान को फलने-फूलने का आशीर्वाद दिया था। उसी के फलस्वरूप आज मेरी गोद भरी पूरी है। भगवन् मेरी एक ही अभिलाषा शेष है कि एक दिन मेरे स्वामी आकर अपने आशीर्वाद के फल को देख जायें। मुझ पापिनी के पश्चात्तापित हृदय को अपने शीतल दर्शन से शांत कर जायें। भगवन्! क्या वे आवेंगे?

महात्मा की आँखों से मोती-से आँसू लंबी सिसकी हुई बरौनी से गिर पड़े। उन्होंने एक बार फिर तीनों लड़के-लड़कियों पर गहरी नज़र डालकर भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—हाँ वह अवश्य आयेंगे। रानी नहीं मानवती!

स्त्री ने आकुल होकर उत्कंठा से पूछा—कब!

"बहुत शीघ्र"

'आखिर, कब तक? मैं रास्ता देखती-देखती बहुत थक गई हूँ।"

"विश्वास रखो, शायद कल ही आ जाय।"—महात्मा ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा।

स्त्री बड़ी श्रद्धा के साथ महात्मा के चरणों में माथा टेककर अन्धकार में एक ओर चली गई। महात्माजी ने दीपक बुझा दिया। धूनी पर राख उलट दी और बड़ के नीचे आह भरकर लेट गये। सारी रात करवटें बदलकर काटी। आँखों से कितना पानी निकल गया हृदय का कितना अमृत ढुलक गया। बार बार रह-रहकर एक-एक बात की याद आती थी। सामने थे राख भर अतीत। आह भरते थे और शून्य में कुछ खोजते थे। फूल-से कोमल उन बालकों की तस्वीरें आँखों के सामने नाचती थीं।

प्रातःकाल महात्माजी ने भाई को बुलाकर जटाएँ कटवा दीं। धूनी का लक्कड़ उखाड़कर फेंक दिया और पिछले धर्मस्थल को अंतिम नमस्कार करके एक भोले-भाले नागरिक की तरह उठ खड़े हुये। पथ पर चलते

के जप-अनुष्ठानी महात्मा की मृत्यु हो गई और उनकी जगह आविर्भूत हुए बालक मद पुरुष। पूरे ग्यारह बरस बाद एक बार फिर बाबू मनोहरलाल के दरवाजे की डांट पीटकर गम्भीर भाव से खड़े हो गये। बड़ी लड़की ने निकलकर कहा—बाबू दफ्तर गये हैं आप कहां से आये हैं?

इन्होंने कहा—तुम्हारी मां कहां है? जाओ उन्हें बुला लाओ।

लड़की मां को बुला लाई। आते ही स्त्री ने पहचान लिया। वह किवाड़ पकड़कर खड़ी रह गई। उसकी आंखों से आंसू की धारा झरझर गिरने लगी। भय से और लज्जा से वह बात न निकाल सकी।

इन्होंने कहा—मुझे पहचाना सरला?

सरला ने सिर झुकाकर कहा—बस, क्षमा कीजिए। मैंने बड़ा पाप किया है।

इन्होंने कहा—खैर अब उसका जिक्र करने की जरूरत नहीं। भाग्य बड़ा प्रबल होता है। भूल जाओ उस बात को, अब मैं तुम्हारे घर मेहमान होकर आया हूं। देखें कुछ खातिर कराओगी।

सरला के मुंह से एक भी शब्द न निकला। उसका कलेजा शायद गले में आकर अटक गया था।

शाम हुई। मनोहर बाबू आये। राह में से समाचार पाकर बुझे लुकिंग की तरह मित्र को घर पर धब्बा लगाये देखकर उनका कलेजा बैठ गया। कुछ कहा नहीं। खाना खाकर चुपचाप बैठ रहे। रात को दस बजे मेहमान स्वयं आकर उपस्थित हुआ, बोला—मित्र, हो गया सो हो गया। ग्लानि से आत्मा को गिराने की जरूरत नहीं। बस आनन्द से रहो।

महात्मा की आँखों से थोड़े-से आँसू लंबी मिलती हुई क्यारियों में गिर पड़े। उन्होंने एक बार फिर तीनों लड़के-लड़कियों पर गहरी नज़र डालकर भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया—हाँ वह अवश्य आयेंगे। रोओ नहीं, भाग्यवती!

स्त्री ने आकुल होकर उत्कंठा से पूछा—कब?

"बहुत शीघ्र"

'आखिर कब तक? मैं रास्ता देखती-देखती बहुत थक गई हूँ।"

"विश्वास रक्खो, शायद कल ही आ जाय।'—महात्मा ने आश्वासनपूर्ण स्वर में कहा।

स्त्री बड़ी श्रद्धा के साथ महात्मा के चरणों में मत्था टेककर अन्धकार में एक ओर चली गई। महात्माजी ने दीपक बुझा दिया। धूनी पर राख उलट दी और वट के नीचे घास भरकर लेट रहे। सारी रात करवटें बदलकर काटी। आँखों से कितना पानी निकल गया हृदय का कितना अमृत सूख गया। बार बार रह-रहकर एक-एक बात की याद आती थी। सोचते थे हाय वह अतीत! प्यार करते थे और प्रेम में कुछ खोजते थे। फूल-से कोमल उन बालकों की तस्वीरें आँखों के सामने नाचती थीं।

प्रातःकाल महात्माजी ने नाई को बुलाकर हजामत बनवा ली। धूनी का लक्कड़ उखाड़कर फेंक दिया और गिरते कमंडल को अंतिम नमस्कार करके एक सीधे-सादे नागरिक की तरह उठ खड़े हुए। घण्टाभर पहले

के बाद सरकारी महात्मा की मृत्यु हो गई और उनकी जगह आविर्भूत हुए नरक मय पुरुष । पूरे ग्यारह बरस बाद एक बार फिर बाबू मनोहरलाल के दरवाजे की चौखट पीटकर गम्भीर भाव से खड़े हो गये । बड़ी लड़की ने निकलकर कहा—बाबू बाहर गये हैं आप कहाँ से आये हैं ?

इन्होंने कहा—तुम्हारी मा कहाँ है ? जाओ उन्हें बुला लाओ ।

लड़की मां को बुला लाई । आते ही स्त्री ने पहचान लिया । वह किवाड़ पकड़कर खड़ी रह गई । उसकी आंखों से आंसू की धारा झरझर गिरने लगी । शोक और लज्जा से वह बोल न निकल सकी ।

इन्होंने कहा—मुझे पहचाना सरला ?

सरला ने सिर झुकाकर कहा—बस क्षमा कीजिए । मैंने बड़ा पाप किया है ।

इन्होंने कहा—खैर, अब उसका जिक्र करने की जरूरत नहीं । मन बड़ा प्रसन्न होता है । भूल जाओ उस बात को, अब मैं तुम्हारे घर मेहमान होकर आया हूं । बेटा कुछ खातिर कराओ ।

सरला के मुंह से एक भी शब्द न निकला । उसका कलेजा मानो गले में आकर अटक गया था ।

शाम हुई । मनोहर बाबू आये । रास्ते में से अकस्मात प्रकट हुए दुर्दिन की तरह मित्र को घर पर कब्जा जमाये देखकर उनका कलेजा काँप गया । कुछ कहा नहीं । खाना खाया, चुपचाप लेट रहे । रात को दस बजे मेहमान स्वयं आकर उपस्थित हुआ, बोला—मित्र हो गया सो हो गया । ग्लानि से आत्मा को गिराने की जरूरत नहीं । बस आनन्द से रहो ।

मेरा तो यही आशीर्वाद तब था और अब भी है। हाँ एक बात विशेष है। अगर इजाजत हो, तो मैं भी दरवाजे की कोठरी में पड़ा रहूँ। इन लड़के लड़कियों का मोह मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल रहा है।

मनोहर बाबू को अनिच्छा होते हुये भी सम्मति देनी पड़ी। मेहमान का डेरा उसी समय से बाहर कोठरी में पड़ा है। वहीं वे अब भी रहते हैं। दिन भर चूरन बेचकर कुछ पैसे पा जाते हैं और लड़के-लड़कियों में बाँट देते हैं। सरला के बच्चे इनसे विशेष हिले हैं। बड़ी लड़की का ब्याह हो गया है। इन्होंने ही कन्यादान किया था। कभी-कभी एक-दो दिन के लिए यह बड़ी लड़की को देखने चले जाते हैं। आज भी वहीं गये हैं। जब तक यह लौट न आयेंगे, छोटा लड़का और लड़की सरला की जान खा डालेंगे। उन लड़के-लड़कियों को अपना ही समझने के लिए भगवान ने इन्हें सुबुद्धि दे दी है। लेकिन मनोहर बाबू की शंका शायद अभी तक कम नहीं हुई है।

हत्यारा

मनुष्य की सबसे सुन्दर रचना है उसके भगवान्, उन्हें बनाकर फिर वह उन्हीं से कतराने की प्रेरणा पाता है। दीनानाथ की सबसे सुन्दर सृष्टि थी मुक्ति भावना। क्योंकि उसीसे उस हत्या की प्रेरणा हुई। जिस दिन उसने जाना—संसार एक बंधन है, एक कारागार है, यहाँ सभी सजा भुगत रहे हैं, उस दिन उसकी बौद्धिक आत्मा बंदी की तरह छटपटा उठी।

जिस लगन से दो हजार साल पहले महात्मा ईसा सलीब पर चढ़ गये थे, जिस विचार से राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु के राजमहल को छोड़कर रास्ते की खाक छानना जीवन का लक्ष्य स्थिर किया था, ठीक उसी ख्याल से दीनानाथ ने इस शताब्दी में अपना नया प्रयोग आरम्भ किया। एक ही चीज के लिए अलग अलग रास्तों से चलना बुद्धिमानों का स्वभाव है। ईसा अपने लिये नहीं संसार के लिये मरे थे; बुद्ध ने बोधिपथ का सुन्दर प्रयास पीड़ित विश्व के लिये ही किया था। दीनानाथ ने भी दीन-दुखियों को मुक्त करना अपना परम कर्तव्य मान लिया।

पहले पहल उसे दया आई एक मक्खी पर, जो गंदगी पर बैठने

मेरा तो यही आशीर्वाद तब था और अब भी है । हाँ एक बात विशेष है। अगर इजाजत हो, तो मैं भी दरवाजे की कोठरी में पड़ा रहूँ । इन लड़के लड़कियों का मोह मेरे पैरों में बेड़ियाँ डाल रहा है ।

मनोहर बाबू को अनिच्छा होते हुये भी सम्मति देनी पड़ी। मेहमान का डेरा उसी समय से बाहर कोठरी में पड़ा है। वहीं वे अब भी रहते हैं। दिन भर चूरन बेचकर कुछ पैसे पा जाते हैं और लड़के-लड़कियों में बाँट देते हैं। सरला के बच्चे इनसे विशेष हिले हैं। बड़ी लड़की का ब्याह हो गया है। इन्होंने ही कन्यादान किया था। कभी-कभी एक-दो दिन के लिए यह बड़ी लड़की को देखने चले जाते हैं। आज भी वहीं गये हैं। जब तक यह लौट न आयेंगे छोटा लड़का और लड़की सरला की जान खा डालेंगे। उन लड़के-लड़कियों को अपना ही समझने के लिए भगवान ने इन्हें सुबुद्धि दे दी है लेकिन मनोहर बाबू की शंका शायद अभी तक कम नहीं हुई है।

हत्यारा

मृत्यु की सबसे सुन्दर सृष्टि हैं उसके भगवान्। उन्हें बनाकर फिर वह उन्हीं से संसार की प्रेरणा पाता है। दीनानाथ की सबसे सुन्दर सृष्टि थी मुक्ति भावना। क्योंकि उसीसे उस हत्या की प्रेरणा हुई। जिस दिन उसने माना—संसार एक बंधन है एक कारागार है वहां सभी प्राणी मुक्त रहे हैं, उस दिन उसकी वैदिक आत्मा पंछी की तरह छटपटा उठी।

जिस ख्याल से दो हजार साल पहले महात्मा ईसा सलीब पर चढ़ गये थे जिस विचार से राजकुमार सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु के राजमहल को छोड़कर रास्ते की खाक छानना जीवन का लक्ष्य स्थिर किया था, ठीक उसी ख्याल से दीनानाथ ने इस दुनिया में अपना नया प्रवेश आरम्भ किया। एक ही बात के लिए अलग अलग रास्तों से चलना बुद्धिमानों का स्वभाव है। ईसा अपने लिये नहीं संसार के लिये मरे थे; बुद्ध ने योगिराज का सुन्दर प्रवास पीड़ित विश्व के लिये ही किया था। दीनानाथ ने भी दीन दुखियों का मुक्त करना अपना परम कर्तव्य मान लिया।

पहले पहल उसे दया आई एक मवेशी पर, जो गंदगी पर बैठने

के लिये भिनभिना रही थी । दीनानाथ ने अपनी लंबी शिखा में तीन बार ग्रन्थि देकर सोचा—शायद यह दहाड़ मारकर रो रही है या अपने तुच्छ जीवन से बेजार है । ओफ ! ओफ !—परोपकार तेरी शक्ति क्षीण हो गई ! तू मुझे जरा बल नहीं दे सकता कि मैं इस दुखग्रस्त आत्मा को सांत्वना दे सकूं । ऐ तामसमय अन्धकार ! तू ने एक प्रकाश की किरण तक मेरे पास नहीं रहने दी ! नाश ! सत्यनाश !

दीनानाथ चौंक पड़ा । एक मकड़ी ने मक्खी को दबोच लिया । थोड़ी-सी भिनभिनाहट थोड़ी-सी फड़फड़ाहट ! फिर सब शांत मौन नीरव ।

अन्धकार का हृदय चीरकर प्रकाश आंखों में भर गया । अब जमाना ही कुछ और है । बीसवीं सदी है । महीनों का रास्ता घड़ियों में तय होता है । बुद्ध को छः बरस से ज्यादा लगा था और दीनानाथ को शायद छः मिनट से भी कम । उन्हें एकांत वन में साक्षात् हुआ था इन्हें अपने जमानतवाले की झोंपड़ी के अन्दर ।

दीनानाथ ने मस्त शरीर जरा चुस्त करके मकड़ी को शाबाशी दी—वाह, खूब !

[दो]

उस दिन से क्यों उसी क्षण से दीनानाथ मुक्ति का सीधा रास्ता पा गया । वर्ष भर की साधना में उसे प्रकाश की जो ज्योति मिली, वह उसकी समझ से अपूर्व थी । वह सश्रमपूर्वक पीड़ित विश्व को उस पार ठेलकर धर्म-संस्थापकों का कठिन कार्य करने लगा ।

उसे प्रत्यक्ष रूप से यह प्रतिभासित हो गया कि प्राणिमात्र में सुख और शान्ति की चिरंतन अनुभूति का अभाव है। सभी योनियों में, सभी वर्गों में उस अभाव की विशेष मात्रा से बेचैनी बढ़ रही है। कहीं भी संतुष्टि नजर नहीं आती। वह दुश्चिन्ता और शोक से जीव मात्र व्याकुल हो रहे हैं।

सांसारिक सफर के कारण जीवन में जो क्षोभ उत्पन्न होता है, उससे किसी का भी निस्तार नहीं। वह क्षोभ जितना प्रबल और अनिश्चित है उतना ही वह अनिवार्य-सा हर-एक के पीछे लगा है जो जितने वेग से भागकर उससे प्राण छुड़ाना चाहता है, वह उतनी ही तत्परता से उसके गले का हार बनकर उसके साथ लगा रहता है।

दीनानाथ को ताज्जुब तो इस बात पर होता था कि अनेक जन्मों के आविष्कारों में मनुष्य ने क्यों अपने जीवन का दुरुपयोग किया। जो चिंता उसके अन्दर थी, वही क्यों नहीं स्वाभाविक रीति से किसी के मस्तिष्क में उत्पन्न हुई। जिन लोगों ने जीवन-मरण के लोकों का परदे से बाहर लाने का यत्न किया वे क्यों नहीं कृतकार्य हुए। इतना सीधा-सा रास्ता उन्हें क्यों नहीं सूझा। क्या मृत्यु ही जीवन का परमार्थ नहीं है। ओह। उसकी गोद कैसी निर्भ्रान्तिपूर्ण है। अनन्त सुख और चिरंतन शान्ति में वही तो जीवन की समस्त भ्रान्ति को विलीन कर लेती है। उसके द्वार के अन्दर पैर रखते ही अभावों का अभाव हो जाता है।

उसी की उज्ज्वल आलोक पूर्ण मुखाकृति को लोगों ने इस प्रकार की कालिमा समझने की भूल की है। मनुष्य की भ्रमपूर्ण बुद्धि के नव-पुराने

संस्मरणों को देखकर कहना पड़ता है कि अगर ऐसी निरर्थक चीज कहीं बाजार में बिकती होती, तो कोई उसे रद्दी के सिक्कों के मोल भी नहीं खरीदता । लेकिन विधाता की परम कृपा का फल मानकर आज भी उसका आकार वैसा ही गौरवास्पद बना है । और अब जब कि दीनानाथ को सफलता की राह का ठिकाना मालूम हो गया है तो उसकी महत्ता और भी अक्षुण्ण हो गई है ।

इस मृत्यु को जीवनरूपी दिन की विश्रांति-पूर्ण रात्रि मानकर दीनानाथ मन ही-मन अपनी सफलता का अनुभव करने लगा । लेकिन यह उसकी विशाल-हृदयता है कि उसने खुद ही उस परमतत्त्व का आस्वादन करने का लाभ नहीं लिया बल्कि निर्मुक्त मोक्ष द्वार की तरह, समग्र संसार के लिये उसका द्वार खोल दिया । यही क्यों अपने ही भावनाभिभूत हाथों से उसने इस परम पावन अनुष्ठान का आरम्भ किया ।

[तीन]

जीवन-रक्षा के लिये जैन-साधुओं की सतर्कता प्रशंसनीय है । उनकी दिनचर्या का विशेष अंश तो जलगत सूक्ष्म कीटाणुओं के बचाव में ही व्यय होता है । दीनानाथ की लगन उनसे भी कहीं बढ़-चढ़कर थी । उसे तो दिन-रात सोते-जागते यही चिंता रहती थी कि किस तरह सृष्टि को सांसारिक क्लेश से छुटकारा दिला दिया जाय । शायद वह एक दिन में उतने जीवों को परलोक अवश्य ही भेज देता था जितने कई साधु मिलकर बचा न सकते होंगे ।

[चार]

कर्मों के अनुसार ही स्वभाव में कोमलता और कठोरता का समावेश होता है। अखण्ड परशुराम में क्षत्रिय और क्षत्रिय बुद्धदेव में ब्राह्मणत्व की विशेषता सभी जानते हैं। दीनानाथ के स्वभाव में भी परिवर्तन शुरू से ही आरम्भ हो गया था। धीरे-धीरे दूसरों के दुखों की अनुभूति से उसका मन विरक्त हो गया। छोटे-छोटे जीवों से चलकर वह बड़े-बड़े जीवों को मारने लगा। उनके छटपटाने, उनके चिल्लाने का उसकी अन्तरात्मा पर कुछ भी असर नहीं पड़ता था।

एक दिन जब वह लाठी का प्रहार एक सोते हुए कुत्ते पर करना चाहता था उसके मित्र कालिकाप्रसाद ने आकर कुत्ते को भगा दिया और एक ओर खड़ा होकर हँसने लगा। मित्र की ढिठाई और नादानी पर दीनानाथ को कितना कष्ट पहुँचा यह शायद कालिकाप्रसाद को ज्ञात न हुआ। दीनानाथ को इस तरह अपनी ओर घूरते देखकर कालिकाप्रसाद ने हंसकर कहा—क्यों भला उसने क्या बिगाड़ा था?

दीनानाथ ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—तुम यह बात नहीं समझ सकते, उसके लिये विशुद्ध मायापरस्ती करने से बचना।

वह इतना कहकर शीघ्रता से अपने काम के लिये चला गया। कालिकाप्रसाद खड़ा-खड़ा उसके विचित्र स्वभाव की आलोचना करता रहा।

दीनानाथ की उससे मित्रता थी, यह बात समझ सकना कठिन है। कारण कि दीनानाथ सदा से ही निर्मोही, निष्ठुर और निस्पृह था। वह किसी से लगाव नहीं रखता था। वहाँ किसी तरह के सम्बन्ध की गंध

जाती, वहां से वह दूर का लड़का होता । उसके असहाय जीवन में प्रेम और स्नेह के व्यवहार का कभी पता न था । मां-बाप थे नहीं । भाई-बहनों की भी उसे याद न थी । उसका जीवन कठोरता और हृदयहीनता के सांचे में ढला था ।

कालिकासहाय भी अजब स्वभाव का था । स्नेह-सम्बन्ध के बाहर शत्रु ईमानलाल से बारबार मिलना उसे पसन्द आता था । जब देखो तब वह उसी के पीछे लगा रहता था । उधर इमानलाल उसकी रंच भी परवाह न करता था । इस तरह विचित्र गति से उन दोनों की मित्रता अपने पैरों चल रही थी । एक हाथ की ताली बजाकर ही कालिकासहाय संतोष कर रहा था । लेकिन ऐसा वह क्यों कर रहा था ? इसका जवाब शायद उसके पास भी न था ।

आज जब कालिकासहाय ने एकाएक आकर कुर्से का मत्था दिया तो ईमानलाल सह न सका । वह मन-ही मन तिलमिलाकर एकान्त में चला गया और किसी विचार में मग्न हो गया । बड़ी देर तक व्याकुलचित्त होने के बाद वह यह सोच सका कि कालिकासहाय अज्ञानी है । उसे इतना ज्ञान नहीं है कि वह एक मक्खी की तरह अपने जीवन की असार्थकता समझ सके । 'मक्खी' का ध्यान आते ही उसे मकड़ी का भी ध्यान आ गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी दिव्य शक्ति ने उसे कुछ संकेत किया है । उसने कहा—हां अवश्य उसे अज्ञानता से मुक्त करना होगा । वह मुझसे हित मानता है । शायद उसकी अन्तरात्मा इसीलिए उसे बार-बार इधर ले आती है । और अब उसे यह नहीं करना पड़ेगा । मैं मकड़ी बनकर उसकी

आत्मा को परमसुख पहुँचाकर तृप्त करूँगा ।

वह फटपट एक चमचमाती हुई छुरी लेकर अपनी पुरानी मित्र की तलाश में निकल पड़ा । थोड़ी ही दूर गया होगा कि कराहने की एक धीमी आवाज ने उसे चौंका दिया । उसने देखा—एक कंकाल प्राय मानवमूर्ति रास्ते में एक तरफ पड़ी थी । उसमें माँस और रक्त का सर्वथा एकदम अभाव हो चुका था ।

दीनानाथ का हृदय न जाने क्यों यह दृश्य देखकर काँप गया पर वह तुरन्त सँभलकर खड़ा हो गया । मन को सुस्थिर करके पूछा भाई—कहो विश्रांति की गोद में जाना चाहते हो ! क्या मैं तुम्हारे उद्देश्य में सहायता दूँ ?

मृत्यु की गोद में छटपटाते हुए पुरुष ने कष्ट से व्यथित स्वर में कहा—थोड़ा पानी ।

दीनानाथ के तन-बदन में आग-सी लग गई । वह बोला—अभी तक पानी पीने की इच्छा रखते हो ?

उस पुरुष ने आँखें खोल दीं । चारों ओर देखकर कहा—हा राजदुलारी कहाँ गई ! मेरी प्यारी बच्ची ...

दीनानाथ—क्यों क्या चाहते हो ?

पुरुष—जीवन मैं केवल जीवन चाहता हूँ । क्या तुम कोई देवता हो भैया ! हा ! मेरी प्यारी राजदुलारी !

दीनानाथ—जीवन नरक है, तुम नरक की क्यों कामना करते हो ?

पुरुष—जीवन नरक ! आप गजब जिसमें अनेक सुखों की

उपस्थित हुई । वह   बोला —

दीनानाथ—हाँ बहन ! तुम महानता में पड़ी हो । क्या तो तुम्हें प्रकाश में छुटकारा मिला है ! आओ बहन, मेरा अमूल्य समय जा रहा है । उसने अपनी नरम छुरी हाथ में ले ली ।

पुरुष की आत्मा सुन गई । उसने कहा—भाई ! तुम क्या कराना चाहते हो ! अभी नहीं मरना चाहती रामदुलारी ।

दीनानाथ ने पर के पास छुरी ले जाकर कहा—तुम मूर्ख हो । आत्मा यह सच्चा रास्ता है—बस ।

[पाँच]

अपराह्न-काल की किरणें तिरछी पड़ रही थीं । दीनानाथ ने जाकर कालिदास को पुकारा । कुछ ही क्षण में दीनानाथ दरवाजा खोलकर बाहर उपस्थित हुआ । वह आश्चर्य से अवाक् खड़ा रह गया । एक अद्भुत लावण्यमयी कमनीय सुकुमारी बालिका सामने खड़ी थी । उसके अपूर्व चेहरे पर विचार की छाया ने अधिकार जमा लिया था । दीनानाथ मुग्ध भाव से कई क्षण तक उसको अपलक दृष्टि से ताकता खड़ा रह गया । वह बालिका भी मूर्तिवत् उसके एक तरफ निश्चल भाव से प्रतीक्षा में इसी तरह अचल बनी रही ।

भीतर से कालिदास ने जल्दी से पुकारा—कौन आया है दीनानाथ ? क्या कोई शिकार हाथ लगा है ?

मैं चला हूँ । दीनानाथ का शरीर एक दफा ऊपर से काँप

एक सिहर उठा । उसने बी पर शासन करके कहा—अभी फिकर हो मैं तो शिकार की ही तलाश में आया हूँ ।

इधर छत पर चले आओ—कहकर कालिकासहाय उसकी प्रतीक्षा में टहलने लगा । दीनानाथ पहुँचा तो कालिकासहाय ने व्यंग्य के भाव से पूछा—आज क्या जरूरत पड़ गई ?

दीनानाथ ने अपनी कमर की छुरी पर हाथ फेरकर कहा—मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ी दया आती है । कई दिन से मैं यह निश्चय कर रहा हूँ कि कम से-कम अपने एक परिचित मित्र को तो कुछ उपदेश दे सकूँ ।

कालिकासहाय ने हँसकर कहा—मैं तो तुम्हारा उपदेश ग्रहण करने लायक नहीं हूँ । अभी मेरी बुद्धि परिपक्व नहीं है अभी संसार को किसी चीज से मुझे विरक्ति नहीं हुई है,इसलिये मैं उसका अधिकारी नहीं। हाँ, तुम्हारे उपदेश का एक भोक्ता मुझे मिल गया है । वह मैं तुम्हें सिपुर्द कर सकता हूँ ।

दीनानाथ उसके मुँह की ओर देखने लगा । उसने फिर कहा—कहो तैयार हो ?

इसी समय कालिकासहाय की बहन कमलावती उस लड़की को साथ लेकर छत पर आ पहुँची । कालिकासहाय ने दीनानाथ से कहा—देखो यही वह लड़की है । इसका पहले ही से तुम्हारे मत की तरफ झुकाव है । अगर तुम इसे अपने धर्म में नहीं लेते तो कमलावती सारे पुण्य की भागी होगी । एक तो इसके शरीर में जान ही कितनी है, दूसरे कमलावती इसे ठेल-ठेलकर यमपुरी भेज देना चाहती है । बेचारी बड़ी गरीब असहाय और

निराधार है। तुम चाहो तो आकर थोड़ा बहुत उपदेश रोज कर जा सकते हो। जब वह पूरी तरह से तुम्हारी अनुयायिनी हो जायगी, तो कोई उसे रोकनेवाला नहीं। सच पूछो तो तुम्हारे मत की सार्थकता इसी तरह के प्राणियों में सिद्ध हो सकती है।

बड़े तर्क-वितर्क के बाद कालिकाप्रसाद ने दीनानाथ को तैयार कर लिया। उसने मन ही मन खुश होकर पुकारा—कमलावती अपना उपदेश खत्म करके उसे इधर ले आ। उसके लिए नए मास्टर साहब रख लिए गए हैं।

कमला ने वहीं से पुकारकर जवाब दिया—नहीं मास्टर की जरूरत नहीं है। वह मास्टर से नहीं पढ़ेगी। हम दोनों मस्त रही हैं।

कालिकाप्रसाद ने जरा तीव्र स्वर में कहा—बस-बस बहुत बात न बना। मालूम पड़ता है एक मास्टर तेरे लिये भी लाना होगा। दिन भर बकती रहती है।

मास्टर के नाम से सहमती हुई कमलावती अपनी छोटी का हाथ पकड़कर उसे कालिकाप्रसाद के पास ले आई।

दीनानाथ धर्मोपदेश की तमाम बातें भूलकर एक साधारण मास्टर की तरह उस अज्ञात अपरिचित बालिका को पढ़ाने लगा। थोड़ी देर में कालिकाप्रसाद कमरे से उठकर नीचे चला गया।

[४]

रात को बड़े गर्व के साथ कालिकाप्रसाद ने अपने पिता के सामने

कहा—बाबूजी, मैंने ठीक कर लिया है ।

पिता ने पूछा—क्या दीनानाथ ने कामा स्वीकार कर लिया है ? वह बड़ा स्वाभिमानी लड़का है तुम जरा उसका फिक्र रखना । वह किसी काम में भी लगा सकेगा इसका मुझे विश्वास नहीं ।

कालिकासहाय—जी नहीं अब वह राजी हो जायगा ।

पिता—ये सब तो बहुत ठीक । बेचारी गरीब लड़की का जीवन सुधर जायगा और दीनानाथ जैसा मस्त इसमें से मनमाना न कर सकेगा ।

पिता ने ही नहीं माता ने भी कालिकासहाय को उसकी सफलता पर बहुत साधुवाद दिए । तमाम घर के लोग उसकी तारीफ करने लगे । अकेली कमलावती को भाई की योजना बिल्कुल पसन्द न आई । वह अपने गाल फुलाए हुए एक ओर बैठा रहा । लेकिन उसका किसी पर कुछ असर नहीं हुआ । कमलावती यद्यपि दिन में कई बार लड़ाई झगड़ा करती थी पर वह उसका पक्की करता थी कि सब झगड़कर भी उसका अपनी सखी पर जो अधिकार है वह किसी दूसरे का सर्वस्व प्यार करके भी नहीं हो सकता ।

दीनानाथ दो-तीन दिन तक बड़े उत्साह से उस अनाथ बालिका को पढ़ाने जाता रहा । उसी थोड़े-से समय के प्रयास ने उसके जीवन की कला में अपूर्व आकांक्षाओं की सृष्टि कर दी । यद्यपि प्रकाश्य रूप में वह उन्हें समझ नहीं सका पर उसकी सूक्ष्म दृष्टि के लिए उनका आभास ही काफी था । यही वजह थी कि अन्तरालाप के प्राण लाभ शान्ति का एक भाव भी उसके हृदय में अपनी जड़ नहीं जमा रहा था ।

एक दिन शाम को जब वह मास्टर आया तो उसके ह[illegible] में बड़ी प्रशांति देख हो गये। उस ऐसा अनुमान हुआ कि वह गमगुम कई दिन से अपना कर्तव्य पूर्ण नहीं कर रहा है [illegible] यदि मास्टर के बदन वह भाग में वह अपना व्यापार में कोई भूल नहीं कर। फिर भी एक शिथिलता आ गई है। वह [illegible] है और [illegible] पता। उसे प्रतीत हुआ जैसे कालिकाप्रसाद ने उस [illegible] है [illegible] लिये। ह वह एक जाल बिछा कर उसकी सांसारिक दृष्टि से [illegible] रहा कर भी है। पर वास्तव में उसने अपनी आध्यात्मिक [illegible] है।

दीनानाथ ने मन मन तय किया कि वह ऐसा न होने देगा। वह अपने पुराने मित्र का अवश्य ह[illegible] जीवननष्ट करेगा।

बस दूसरे दिन से वह पूर्ववत् बड़ी तत्परता से अपने कार्य में व्यस्त हो गया। मास्टर के रूप में कालिकाप्रसाद के मकान की तरफ जाना बन्द कर दिया और [illegible] न सही कमलावती तो उसके इस कार्य से प्रसन्न ही हुई।

[सात]

कई दिन प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कालिकाप्रसाद न आया तो दीनानाथ से रहा न गया। वह खुद ही उसकी तलाश में निकल पड़ा। आज उसने तय कर लिया था कि कालिकाप्रसाद की खबर लेनी ही होगी।

वह बड़ी तेजी से अपने मित्र के मकान की तरफ दौड़ गया।

कालिकाप्रसाद का मकान सड़क पर था। दूर से उसका द्वार नजर

आता था । दीनानाथ ने देखा, द्वार खुला पड़ा है । उसने मन ही मन खुश होकर कहा—आज अच्छा मौका है । कानून को एक बार झुका चुका हूँ आज उसको मसल डालूँगा । पाप के मूलोच्छेद से बढ़कर दूसरा पुण्य इस जीवन में है कहाँ ? यह वेद या कानून सबसे बड़ा पाप है । इसी के निकम्मस से आज वह उसारकम नहीं प्रज्वलित हो रही है और उसमें जल रही हैं असंख्य आत्माएं ।

वह बड़ी तेजी से, तीर की तरह, कालिकासहाय के मकान में चला गया । उसका हाथ बराबर कमर की छुरी पर था । पहले वह सीधा कालिकासहाय के कमरे की तरफ गया । वहां कोई न था । वह दूसरे कमरे में पहुँचा वहां भी कोई न था । ऊपर के तमाम कमरे देखकर नीचे उतर आया, भीतर मकान में प्रवेश किया ।

अन्दर पैर रखते ही उसने देखा कि घर के सब लोग बरामदे में इकट्ठे हैं । बड़ी दौड़-धूप और परेशानी का दृश्य उपस्थित हो रहा है । वह झटपट वहां जा पहुंचा ।

वह मृत्यु को देखकर खुश होता था लेकिन आज वह रो पड़ा । उसने सजल नेत्रों से अपने मित्र के पिता से पूछा—क्या हुआ है ? कालिकासहाय कहाँ है ?

वे कुछ भी जवाब न दे सके । उसी समय कालिकासहाय डाक्टर को लेकर आया । दीनानाथ बड़ी दीनता के साथ उसकी तरफ बढ़ा लेकिन कालिकासहाय उसकी तरफ ध्यान न दे सका । वह डाक्टर को कुर्सी देकर घुटनों के बल चारपाई की पाटी पकड़कर जमीन पर बैठ गया और रोगिणी

को पुकारा—राजकुमारी !

राजकुमारी बेहोशी की बजह से आँखें न खोल सकी। डाक्टर बड़ी देर तक नब्ज हाथ में लेकर देखता और कालिकाप्रसाद को साथ लेकर वह बाहर निकल गया।

दीनानाथ पागल की तरह वहीं खड़ा रह गया। उसके कानों में बराबर राजकुमारी का नाम गूंज रहा था। पहले भी यही नाम एक बार उसके कान में पड़ चुका है इसका उसे ध्यान न था। राजकुमारी को पढ़ाते समय तो वह कुछ भी उससे पूछने का साहस न कर सका था। अपने मित्र से भी विशेष कोई बात पूछने की कभी उसने उत्कंठा न दिखाई थी फिर भी वह नाम से किस तरह परिचित था !

कालिकाप्रसाद दवा लेकर लौट आया। दीनानाथ शोक से बेहद उत्तेजित हो रहा था। उसने कालिकाप्रसाद को रोककर पूछा—डाक्टर ने क्या कहा ?

कालिकाप्रसाद ने सूखे मुंह से उत्तर दिया—कहा है कि ईश्वर ही भला करे। ज्यादा तो कुछ है नहीं एकाएक धक्का लगा है। उसकी कमजोरी देह सभाल नहीं सकी है।—लाओ भाँ ! प्याली। दवा पिला दूं। आज रात भर जागना पड़ेगा। आप और पिताजी तो दिन से जाग रहे हैं। आज मैं जाग लूंगा। कल लता जाकर पड़ रहिये जरूरत होने पर बुला लूंगा।

माँ उठकर नहीं गया। कालिकाप्रसाद ने दवा पिलाकर फिर मरीज़ को सोने को कहा। बड़ी मुश्किल से सब लोग वहाँ से गए।

दीनानाथ अब तक भौचक्का-सा बैठा था। उसने एकांत पाकर उलाहने के दो तीन शब्दों में ही हृदय की समस्त वेदना उंडेलकर पूछा—मुझे खबर ही न दी!

कालिकाप्रसाद ने धीरे से कहा—तुम मृत्यु को ही जीवन समझते हो इसलिये यद्यपि राजकुमारी ने स्वयं बुखार की तीव्रता के समय तुम्हें कई बार याद किया था।

दीनानाथ का सारा शरीर कांपने लगा। राजकुमारी! राजकुमारी! उसके कानों में गूंजने लगा। उसकी आंखों के सामने उस वृद्ध पुरुष की समस्त बातें प्रत्यक्ष हो उठीं। उसे ऐसा मालूम पड़ा जैसे समस्त संसार चक्कर लगा रहा है। वह आरामकुर्सी पर बेहोश होकर गिर पड़ा।

कालिकाप्रसाद रोगिणी की श्वास की गति पर ध्यान दे रहा था। वह दीनानाथ की हालत का अनुमान नहीं कर सका।

थोड़ी देर में दीनानाथ को होश हुआ। सिर उठाया देखा—कड़वे तेल के दिए की बत्ती धीमी जल रही थी। कालिकाप्रसाद भी अपनी कुर्सी पर ऊंघ रहा था।

दीनानाथ ने मित्र का कंधा हिलाकर कहा—तुम जाकर सोओ। मैं बैठा हूं। दिन में सो चुका हूं, मुझे बिलकुल नींद नहीं है।

कालिकाप्रसाद—नहीं।

दीनानाथ—क्यों नहीं जाओ तुम जाकर लेट रहो।

कालिकाप्रसाद—डाक्टर की ताकीद है। आज की रात्रि कठिन है। मैं आज उठकर न जाऊंगा।

दीनानाथ चुप न रह सका, उसकी आँखों से आँसू की बूँदें झलझलाने लगीं। कालिकाप्रसाद ने कहा—यह क्या, तुम   तुम   इस तरह !

हाँ, भाई—कहकर दीनानाथ चुप हो गया। आगे उससे बोला न गया। कालिकाप्रसाद उसके मनोभाव को देखकर वहाँ से उठ गया।

दीनानाथ रोगिणी के श्वास पर एकटक ध्यान लगाए बैठा रहा। जरा भी स्पंदन होने से वह सजग हो जाता था। उसके टूटे हुए हृदय में एक ही अभिलाषा थी। वह भी पूरी न हो सकी। राजदुलारी ने आँखें न खोलीं। न खोलीं। रात्रि के अवसान के साथ उसके जीवन का भी अवसान हो गया।

उसके मृत शरीर में भी जीवन का स्पंदन खोजता हुआ दीनानाथ विकल भाव से चारपाई पर बैठा रहा। जिसका तमाम समय बराबर मृत्यु में ही सुख का अभिलाष मानने में व्यस्त रहता था, वह आज जीवन की एक-एक श्वास के लिये तरस गया।

निर्मम में ममता का स्रोत फूट पड़ा। हत्यारे में करुणा की रागिनी बज उठी। पाषाणहृदय निर्दय की दृढ़ दीवार एक ही आघात में छिन्न भिन्न हो गई। हाय रे! परिवर्तन! दीनानाथ चुपचाप भावों की उन्मत्त लहर में राजदुलारी की मृत्यु को अपनी हत्याओं की सूची से अलग रखना चाहता है पर न जाने कौन आकर उसका हाथ फिर मोड़ देता है। बरबस के उस हाथ का थामने की क्षमता कहाँ! वह बेहद उद्विग्न और उद्वेलित होकर इधर उधर देखना चाहता है पर कुछ दिखाई नहीं

पड़ता—कुछ समझ में नहीं आता । संसार के पथ-प्रदर्शक को आज अपने पथ-प्रदर्शन के लिए किसी की नितान्त आवश्यकता है ।

व्यवधान

हिमालय की तलहटी में सुविस्तृत कान्तार के प्रारम्भ से हटकर, स्वच्छ-सलिला सरिता की कमर में लटका हुआ एक बड़ा-सा समतल भूखण्ड पड़ा था। उसमें नींबू-नारंगी की किस्म के बहुत से बागानी झाड़ थे। बीच बीच में तरह-तरह के पहाड़ी वृक्ष विशेषरूप से लगाये गये थे उनके पनपने के लिए पर्याप्त साधन भी जुटाये गये थे। उस भूभाग का शेष चौथाई हिस्सा हरित रसमय घास से ढका हुआ था। शीतल वायु के झोंकों से एक साथ असंख्य पक्षियों के हिल उठने से एक विचित्र प्रकार का आनन्द सजीव हृदय में भर जाता था। उसके बीचोंबीच एक उत्कट ढंग से बनाया हुआ मकान था। ठीक बौद्ध-स्तूप की तरह, पर बेजोड़—प्रयुक्त हाथों की कारीगरी का सजीव नमूना। ऐसा भान पड़ता था मानो वनदेवी की अलौकिक रूप-राशि की अकस्मात् एक झलक पाकर शान्तिपुरुष सब कुछ भूलकर उसके पीछे सघन कान्तार की ओर दौड़ गये हों और उनका भूसाधार मार्तंड चुपचाप खड़ा रह गया हो।

उस सूत्राधार एकान्त भवन में उन्नत मस्तक, उभरे वक्षस्थल और उभरी हुई उमंगोंवाले, राम लक्ष्मण की तरह, दो युवक रहते थे।

एक का नाम मदन और दूसरे का किशोर था। दोनों कृषक थे। पृथ्वी को खोदकर बोना, धान्य को इकट्ठाकर और फल-फूलों को भरकर राजधानी में भेज देना, बस यही उनके काम थे। वे दोनों एक ही बचपन की उन्मादक सुरभि थे। साथ-साथ रहे थे। साथ साथ खेले-खाये थे। साथ ही साथ अवस्था की परिणति के पथ देखे थे। उनके दो शरीरों में विधाता ने एक ही भाव की प्रतिष्ठा की थी। एक का दर्द दूसरे की आह थी। एक का पसीना दूसरे का रक्तस्राव था।

पेड़ों में बहारें आतीं और चली जातीं। फूलों में यौवन निखरता और खिलता और बिखर जाता, पर उन दोनों के हृदय प्रेम की डोर से कसकर बँधे थे। मलयपवन के उत्तराभिमुख झोंकों को साथ ही साथ आलिंगन करते थे। हँसती हुई कलियों को कभी अकेले में देखकर खुश होने का लोभ किसी के मन में स्थान न पाता।

वे दिन उनकी विजय के दिन थे। पराजय का नाम उनके निर्धारित कामों के लिए अपरिचित था।

[दो]

अमावास की दूसरी कुटी का जन्म हुआ। उसमें रहने के लिए आकाश से एक चन्द्रमा उतरकर आया। वन-श्री शोभामय हो गई। पक्षियों के गान में माधुरी भर गई। फूलों से हँसी झरने लगी और लहरों में जीवन प्रकंपित होने लगा।

इस कुटी के झरोखे सभी पगडंडियों पर झाँकते थे। जिधर से

भी निकला बरामदा की आँखें खुली हुई मिलती थीं। कुटी की स्वामिनी अपने झरोखे में बैठकर किसी की प्रतीक्षा करती थी। कभी द्वार पर रेशम की शाल का आसन लेकर पीठ पर बिखराये हुए केशों को सुखाती और कभी मेंहदी रचाये हाथों से भौंरों को उड़ाती हुई कलियाँ चुना करती। उसकी हँसी में फूल झरते थे। उसकी चञ्चल चितवन में जादू बरसता था।

किशोर और मदन हँसते हुए घर से निकले थे। लेकिन वह हँसी कहीं मार्ग में ही रह गई। खेत सिंचाते समय पौधे सींचते समय वे दोनों एक ही विषय का चिन्तन कर रहे थे, पर कोई कुछ न कहता था।

वह कौन है? उसने किसकी ओर देखा था? देखा दोनों ही को था पर अवश्य मेरी ओर विशेष रूप से। उसकी दृष्टि में मीठी हँसी भी थी। उस हँसी में कोई संकेत भी था। और वह तो बिलकुल स्पष्ट ही था—यही सोच-समझकर उन दोनों के हृदयों में भेद-भाव का जन्म हुआ। अभिन्नता में अन्तर पड़ गया।

[तीन]

उस दिन से मदन और किशोर को किसी ने साथ आते जाते न देखा। घर से निकलते तो दोनों के दो जुदा रास्ते होते। एक पूरब चलता तो दूसरे का पश्चिम जाना आवश्यक होता। एक इस कोने पर काम करता तो दूसरा खेत के उस कोने पर। घर आते तो आगे-पीछे। एक का बिस्तर एक ओर लगता तो दूसरे का दूसरी ओर। खाने-पीने में भी कोई किसी की प्रतीक्षा न करता। बातों में उदासीनता थी, व्यवहार में एक तरह का

विचित्र अनुराग । दोनों-दानों की आँखों से बचकर उस लावण्यमयी सुन्दरी की कुटी की ओर जाना चाहते तो चुपचाप खिसक जाते । एक दूसरे को कानों-कान खबर न होने देने के लिए भरसक सतर्क रहता । डर था कहीं पहले ही दूसरा जाकर उस पर अपना असर न डाल दे ।

दोनों छिप छिपकर पहुँचने लगे । परिचय हुआ और निर्जनता की सुविधा पाकर वल्लरी की तरह बढ़ गया । आलाप होने लगा फिर भेंटें चढ़ाई जाने लगीं । अपना-अपना पुजापा लेकर दोनों ही एक एक दूसरे से बचकर जाने लगे । एक पश्चिम-द्वार से जाता तो दूसरा पूर्व द्वार से । एक सन्ध्या की लाली के साथ पहुँचता तो दूसरा सूर्योदय की किरणों के साथ जाकर अपना अर्घ्य समर्पित कर आता । जो फूल किसी समय देवार्चन के उपकरण थे वे आजकल न जाने किस तरह जाकर उस रमणी का शृङ्गार करते । पुष्प-गंधविहीन धूलि धूसरित देव-प्रतिमा की ओर किसी का ध्यान न जाता । सजीव-साकार सौंदर्य प्रतिमा के सामने प्रस्तर-मूर्ति की कौन परवाह करता ?

घर में, घर से बाहर जो कुछ दर्शनीय और बहुमूल्य मिलता वह देवीजी के चरणों में अर्पित हो जाता । रमणी के सामने दोनों ही अपने को तमाम सम्पत्ति का स्वामी बताते । कोई भूलकर भी अपने साथी का नाम जबान पर न लाता ।

कोमलाङ्गी युवती इन दोनों बलशाली युवकों के विचित्र आचरण पर हँसती और तरस खाती थी । मनुष्य अपने उत्कट बल पराक्रम का चाहे जितना गर्व करे, पैरों की धमक से पृथ्वी को कँपाने की शक्ति भले ही

रखता हो, पर सुन्दरी तरुणी युवती के समक्ष वह सदा दया का पात्र है। उसके कोमल बाहु पाश के सामने उसकी तलवार कुण्ठित हो जाती है। उसकी मीठी-मन्द मुसकान का लोहा बड़े से बड़ा योद्धा मानता है। इसीलिए वह युवती भी इस मदोन्मत्त कुसुम बाड़ी पर असीम कृपा रखती थी। वे उसकी दया के ही पात्र थे।

[चार]

मदन और शृंगार जब इस प्रकार प्रेम के चक्कर में पड़ चुके थे। जब दोनों नित्य उस युवती के सामने अपनी नई-नई लालसाएं ले जाकर अर्पित कर देते थे, जब पारस्परिक सौहार्द का बन्धन लघु ही शिथिल हो गया था; उस समय उनकी तरावट भँवर में झोंके खा रही थी। प्रणय-मदिरापान का जितना ही आश्वासन उन्हें मिलता था, मनुष्य का महत्-तत्व उतना ही उनके पास से खिसकता जाता था।

उनके जीवन की आदर्श नष्ट हो चुकी थी। विलास ने आत्मा के पवित्र भाव को दूषित कर दिया था। लापरवाही ने घर की चलचलाती लक्ष्मी का द्वार बन्द कर दिया था। खेतों में शस्य-श्री की हरीतिमा नहीं लहराती थी। सरिता के बंधे हुए बांध में फूट पड़नेवाले कमलों की शोभा से मान्सर प्रदेश शून्य हो गया था। कुसुम-समूह का मकरन्द मधुकर की दया से बसन्त के प्रभात में ही लुटा जाता था पर उधर देखता ही कौन? किसे अब यह ताकते रहने का अवकाश रह गया था।

निकुंजों की रमणीयता, वसुन्धरा की कान्ति और कान्तार का

आकस्य अपना अपना स्थान छोड़कर कैसे उस सुन्दरी सलोनी युवती के नयन विलास में ही आ बसे थे। उसी की चितवन में अपने चिरवाञ्छित चिर-राधित रूपसौन्दर्य का समावेश हुआ देखकर वे युवक युवती भी कैसे प्रतिपल उसकी ओर खिंचे जा रहे थे। अवसर पाते ही उनमें से प्रत्येक उसकी अनुपम छविमयी रूपमाधुरी को आँखों के रास्ते पी जाना चाहता था। उसकी कल्पना-रचित अभिनव पुरुष-प्रतिमा को अपने हृदय-मन्दिर के निभृत अन्तराल में छिपा रखना चाहता था।

[पांच]

युवती का नाम मालती था पर सदा कुसुमिता मालतीलता उसे भाती थी। मदन और किशोर के मूक प्रणय-निवेदन की भाषा पढ़ने में मालती को प्रयास नहीं पड़ा था।

एक दिन उसने किशोर से एकान्त पाकर कहा—आपको यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि मैं अब सामाजिक बन्धन में बंध जाना चाहती हूँ। नगर से बाहर समाज से दूर रहकर भी मुझे उसके निकटता की आवश्यकता प्रतीत होती है। आशा है आप मुझे सहायता देंगे। मैं देखती हूँ इसके बिना हम लोगों का स्नेह चिरस्थायी नहीं हो सकता। जैसे जिसके स्वार्थ की सीमा जहाँ पर अन्त होगी वहीं उसके औदार्य का भी लोप हो जायगा। किशोर का हृदय खुशी से नाच उठा। इन्हीं बातों को सुनने के लिए वह अधीर हो रहा था। मालती ने फिर कहा—उसके लिये इसी पूर्णिमा का दिन निश्चित है।

फिर क्या था—किशोर सहसमुख होकर उस नवीन योजना का हृदय से स्वागत करने लगा । उसके प्रेम में आज विशेष मधुरता थी ।

मालती ने उस दिन मीठी-मीठी मृदुल हंसी हंसकर और कुछ-कुछ लजाकर उसे विदा किया और चलते चलते अनुरोध कर दिया—समाज की मर्यादा के विरुद्ध अब विवाह से पहिले भेंट न हो सकेगी ।

मदन के साथ भी यही व्यवहार हुआ । उस दिन दोनों ही खुशी से फूल रहे थे और छिपे छिपे जासूसी कर रहे थे कि कहीं दूसरे पर रहस्य न प्रगट हो जावे । इस से नींद उड़ गई थी । खुशी से भूख-प्यास हरण हो गई थी । बस, उसी मंगलमयउत्सव की उत्सुक प्रतीक्षा थी ।

दोनों ने प्यार के लिये बड़ी तैयारियां कीं—अलग अलग चुपचुप और बिलकुल एक दूसरे से पृथक् ।

[६]

मालती का आश्रम फूलों से सजा था । नवीन लताओं ने बढ़कर उसके द्वार पर वन्दनवारें बांधी थीं । लताओं के द्वार पर झूलती हुई शाखाओं पर बैठकर कोकिल मंगल गान गा रही थी ।

मालती ने भी अपने शरीर का वस्त्राभूषणों से सजाया था । केसर के रंग में रंगी हुई साड़ी उसकी देह-लता में मिली जा रही थी ।

सखी ने द्वार खोलकर बड़ी शिष्टता से मदन को भीतर बुला लिया । उसको लाई हुई अमूल्य भेंट लेकर नीची निगाह से मुस्कराते हुए

एक ओर रख दी।

मदन ने अपना स्थान लिया ही था कि किशोर ने प्रवेश किया। उसकी भी अनुपम मदन-स्मृति की साथी ने उसी तरह लेकर रख लिया। किशोर भी वहीं मण्डप के नीचे बैठ गया।

आज ही प्रथम बार वे दोनों मालती के यहां साथ-साथ पधारे थे। दोनों का ठाठ निराला था। दोनों राजकुमारों की तरह सजकर आये थे, और इस प्रकार बैठे थे जैसे एक दूसरे को जानता ही न हो। दोनों मन ही मन कुढ़ रहे थे।

इसी समय दोनों की आंखों में अविश्वास और आश्चर्य की सृष्टि करते हुए मालती ने प्रवेश किया। आज लज्जा और संकोच से उसकी शोभा अपार हो रही थी। वह एक अनिन्द्य सुन्दर युवक के हाथ का आश्रय लिए हुए थी। मण्डप में प्रवेश करते ही उसने किंकर्तव्यविमूढ़ इन दोनों युवकों को अनेकानेक धन्यवाद देते हुए कहना आरम्भ किया—आप लोगों को कितना कष्ट हुआ है मैं जानती हूं। आप ही की असीम कृपा से आज शुभवसर प्राप्त हुआ है जब कि मेरे आराध्यदेव यहां उपस्थित हुए हैं। जिनके लिये मैंने जीवन की अमूल्य घड़ियों में एकांत निर्जन में कठोर तपस्या की थी आज वे आप लोगों के सामने हैं। आप लोग ही हमारे माता पिता भाई बन्धु हैं। आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने स्वामी की चरण सेवा के उपयुक्त हो सकूं।—पर वे दोनों अवाक् एक दूसरे को ताक रहे थे। उनकी मुख श्री मलिन और विवर्ण हो गई थी। कोई उत्तर मुंह से न निकलता था।

वहां से लौट आने पर एक बार फिर मदन और किशोर एक हो गये। अभी तक वे हिमालय की सघन सुन्दर उपत्यका में विचरण करते हैं। मालती वहां से चली गई है, पर उसकी याद कभी कभी उन दोनों के मन को ग्लानि से भर देती है। वे अपने उस पागलपन पर हंसते भी हैं और शर्माते भी पर मुंह से एक शब्द भी उस संबंध में निकालते डरते हैं।

निष्फल-स्वप्न

जहाज के कप्तान हडसन ने अपने एक मल्लाह के कन्धे में उंगली गड़ाकर कहा—सानठोने! वे क्षितिज पर बादल उठ रहे हैं! क्या तुम उनके विषय में कुछ कह सकते हो?

सानठोने ने गर्दन फिराकर जवाब दिया—मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि वे इतनी तेजी से बढ़ रहे हैं, जिसका उन्हें कभी अधिकार नहीं।

हडसन ने जरासा हंस दिया फिर कहा—उनके अधिकार का विचार करना हमारे वश के बाहर की बात है।

सानठोने ने उसी तरह लापरवाही से सिर हिलाकर कहा—बेशक!

कप्तान अपने कर्मचारियों को हुक्म देने वाला था कि हवा का एक जोरदार झोंका आया, और जहाज तीन फर्लांग की दूरी पर जा पहुंचा। हडसन ने धैर्य को नहीं जाने दिया। उसके लिये यह साधारण बात थी। उसने चिल्लाकर कहा—तूफान।

दूसरे ही क्षण एक-दो-तीन झोंकों ने जहाज को बुरी तरह झकझोर डाला। जरा पहले समुद्र जो शान्त और सौम्य था, उसने ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया जिसको उपमा देकर समझाना असंभव है।

पर्वताकार भीषण लहरों पर वह हमारी मन का जहाज खूनी पक्षी की तरह काँपने लगा। ऐसा घोर विकट शब्द होने लगा कि कानों के परदे फटे जाते थे। मालूम पड़ता था कि जैसे सारा ब्रह्माण्ड उखड़ कर प्रलय की तैयारी में लगा है। शराबी की तरह मतवाली प्रमत्त जलराशि और उसमें से तरंग मालाएं समीप पर्वत श्रेणियों की तरह वेग के ऊपर से निकल जाती थीं।

दिशाओं का ज्ञान नहीं रह गया था। एकाएक अभूतपूर्व वज्रनाद से उस भयङ्कर तूफान का भी हृदय हिल गया। जहाज एक भैरवी कठोर चट्टान से टकरा गया। दूसरे क्षण उन्मत्त लहरों और प्रचण्ड वायु के झोंकों से नाविक और अर्धमृत यात्रियों के शरीर समुद्र में बिखर गये। जहाज के टूटे हुए मस्तूल बेकार हो गये। चार कल पुर्जे लहरों में इधर उधर बहने लगे। देखते देखते जहाज का नाम निशान मिट गया। केवल विराटकाय तरंग-समूह अपनी दुर्जेय शक्ति का अपूर्व प्रदर्शन करते हुए लहरों का हाहाकार मचाते रहे। मनुष्य की क्षुद्र-हीन प्रेरणा स्वप्न के साम्राज्य की तरह विलीयमान हो गई।

[ग]

गौरव सम्पन्न का वरकर शुभ्र, सौम्य शान्त और उज्ज्वल प्रभात धीरे-धीरे पूर्व आकाश में उदय हुआ। कहाँ था वह भीषण तूफान और विकट था वह महाप्रलय! चाँदी-सोने के सितारों से उज्ज्वल देवत-पुष्प जाल की राशि से कितना भिन्न था लेकिन अदृश्य-अनिश्चय शक्ति के साथ वही

कितना समीप था ? सामने क्षितिज तक फैली हुई अपरिमित नील जल राशि कितनी शांत और अचंचल थी । उसे देखकर कौन कह सकता था कि यही सौम्य सागर संक्षुब्ध होने पर कैसा उन्मत्त हो जाता है । जब लामतोने ने सिर उठाकर सूर्य की प्रसन्न-किरण की ओर देखा, तो वे सारी बातें उसके मन में एक साथ आकर प्रविष्ट हो गईं । उसने अपने शिथिल शरीर को बालू के उसी बिछौने पर अलस भाव से डाल दिया । आँखें बन्द करलीं । और जल राशि की घटना का अपनी समस्त शक्ति से स्मरण करने लगा । लेकिन वह कैसे किनारे आ लगा जहाज क्या डूब गया और सब लोगों की क्या दशा हुई । इसका कोई आभास उसे न मिल सका ।

लामतोने ने आँखें खोलकर एक बार अपने चारों ओर देखा । सामने वही महोदधि दुग्धाकार नीलवर्ण मेघ की तरह चुपचाप सो रहा था । ऐसा प्रतीत होता था जैसे कल की उद्दण्ड चेष्टा के पश्चात् उसे पूर्णविराम की आवश्यकता हुई है, या मन ही मन ग्लानि के भाव से भरकर मुंह ऊंचा नहीं कर रहा है । लामतोने उठकर बैठ गया पीछे निर्जन वन्यकानन प्रदेश था । उसके स्वभाव में सदा से जो लापरवाही और मस्ती थी वह इस समय न जाने क्यों दूर हो गई थी, और उसका चेहरा दुश्चिन्तामय चिन्ता के गम्भीर मेघों से आच्छन्न हो गया था । वह उठकर खड़ा हो गया और चारों ओर व्याकुल दृष्टि दौड़ाने लगा ।

समुद्र के महाभयंकर तूफान से या कहिये मृत्यु के मुंह से निकल आने की उसे खुशी होनी चाहिये थी । जिस दैवी शक्ति ने उसे सुरक्षित उपकूल पर ले जाकर सुला दिया था, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के

किया । उसकी नाक के पास हाथ रखकर देखा दिल की परीक्षा की, पर उसकी समझ में कुछ भी न आया । फिर भी वह बराबर कम करता रहा । उसने उसे उस्य सिय दिया । आध घण्टे बाद एक हल्का स्पन्दन प्रतीत हुआ । लानतोने को जैसे एक भारी साम्राज्य मिल गया । उसने उसकी सुश्रूषा में अपनी सारी अक्ल खर्च कर डालने में कोर-कसर न की । दूसरे दिन प्रातःकाल जब वह उठकर बैठ गया तो लानतोने का हृदय खुशी से नाच उठा । उसने बार-बार लानतोने की कृपा के लिये धन्यवाद का बोझ उस पर लादा तो वह सचमुच ही अपने आपको बड़ा कर्मकुशल समझने लगा ।

लानतोने के नवीन साथी का नाम किमेरिन था । वह बड़ा ही हसमुख और विनोदप्रिय था । बात-बात में उसे हंसी का मसाला उससे सहज ही मिल जाता था । जिस गुण के लिये चार्लीचैपलिन कई सहस्र रुपये प्रतिवसाह पैदा करता है वह किमेरिन में उससे किसी कदर कम न था । उसके साथ उस विजन देश में भी लानतोने के दिन मजे से कटने लगे । किमेरिन के उस अलौकिक गुण का वहां बस इतना ही मूल्य था ।

वे दोनों पहाड़ियों पर घूमते थे । कन्दराओं में विचरते थे । समुद्र के किनारे बैठकर मछली पकड़ते और और जहाजों की प्रतीक्षा किया करते थे । उस छोटे से टापू का संसार एक तरह से निराला ही था । अजीब-अजीब जानवर थे । विचित्र तरह के फलफूल थे । किनारों पर समुद्री पक्षी अपने ताकतवर डैनों को फड़फड़ाया करते थे । कई महीने बीत गये पर कोई जहाज उधर आता नजर न पड़ा ।

इसी समय लानतोमे एकाएक उछल पड़ा, और जोर से झंडी हिलाकर चिल्लाया। करीब दो मील की दूरी पर एक जहाज आ रहा था। अनुकूल बहने वाली हवा ने सौभाग्य से उसका संकेत उस तक पहुंचा दिया। एक क्षण में जहाज ने अपना रुख बदल दिया। अब मारे खुशी के लानतोमे पागल हुआ जा रहा था। पर जिमेरिन उसी तरह उदास भाव से उसकी ओर देख रहा था। आखिर उसने कहा—लानतोमे! यदि कभी तुम मार्सिलीज पहुंच जाओ तो पहाड़ी के उस पार मांझियों की बस्ती में जरूर जाना। वहीं शहतूत के बगीचे के पास, अंगूर की बेलि से ढका हुआ, एक मकान मिलेगा। वह मेरी प्रेयसी का घर है। अगर वह उसमें न मिले—और नहीं मिलेगी क्योंकि आज शाम के बाद वह सदा से मेरी होकर भी मेरी न रहेगी—तो लोगों से पता लगा कर जरा उसके पास तक चले जाना। आज मेरे प्रतिस्पर्द्धी जोसेफ के साथ उसके जीवन का सम्बन्ध-सूत्र ग्रथित कर दिया जायगा। कृपाकर मिसेस जोसेफ के पास मेरी विवशता का समाचार पहुँचाना न भूलना कि जिमेरिन वहां से आकर फौज में भर्ती हो गया था। धीरे धीरे सिपाही के पद से बढ़कर वह सेना का कप्तान हो गया। उसने अनेक युद्ध विजय किये। जितने भाग्य और वैभव की शर्त उसके पिता ने लगाई थी, उससे सहस्र गुना उसके पैरों पर लोटते थे। वह चाहता, तो बीच में ही लौटकर वे सारी शर्तें पूरी कर डालता। पर महत्वाकांक्षा ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। दुर्भाग्य उसे एक युद्ध में ले गया। पराजय हाथ रही। वह बन्दी हो गया। अनन्त दिशाओं तक व्याप्त महासागर के शून्य-निर्जन टापू में, एक अति भयंकर किले में बन्द कर दिया गया। सारे

उसका अनुमान करता। इसीलिए तीन बार पास से गुजर जाने पर भी उसने मार्सिलीज में जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। सोचा था, जब कभी उस शहर में जाना होगा, तब देख लूंगा। यह दुस्तर-संधान अभी न भी पहुँचाया जाय, तो कोई हर्ज नहीं और यह कौन कह सकता है कि वहां उसको सुनने के लिए कोई बैठा ही होगा! बरसों के पुराने और शिथिल प्रेम को कोई युवती अपने हृदय में पाल-पोस रही होगी, इस पर जानतोमे को कतई विश्वास न था।

इसीलिए ठीक पांच बरस बाद उस शहर में जाने पर वह जहाज से उतरकर एलिसा का पता लगाने चला।

बड़ी मुश्किल से एक बूढ़ी औरत ने बतलाया—ठीक है उस तरफ पन्द्रह-सोलह बरस पहले एक घर था। वहां एलिसा रहती थी पर अब कई साल से वहां नहीं है। आप उस गांव की ओर चले जाइये, वहां मालूम कीजिये। शायद कुछ पता चले। यह तो बहुत दिनों की बात है।

जानतोमे उधर गया। वहां न तो एलिसा का मकान था न उस गृह की देहलि। केवल खंडहर देखकर इतना ही अनुमान हो सकता था कि वहां कभी मनुष्य रहते थे। बहुत देर तक जानतोमे वहीं एक प्राचीन वृक्ष की छाया में बैठा हुआ एलिसा की कल्पना करता रहा। फिर इधर उधर पूछताछ करने से मालूम हुआ कि वह किनारे से दूर किसी नगर में रहती है। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि पिता की मृत्यु के बाद उसने जासेफ को कोरा उत्तर दे दिया था कि पिता की प्रतिज्ञा पालन के लिए वह तैयार नहीं है।

आ सका। इसलिए उसने अपना संदेश कहने को मुझे भेजा है। उसे क्या पता कि तुमने आक्षेप से ब्याह नहीं किया है। आह! नहीं तो वह जरूर ही आता। यही सब सोचकर उसने संसार त्याग दिया है।

इस तरह उसने मलिन वेष धारिणी मुरझाई हुई लता तुल्य बनकर एलिसिया से सारी कथा कह सुनाई। एलिसिया की आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। वह देर से जानकर जाने के कारण लानतोने से किसी तरह मालूम न हुई बल्कि अपने ही मस्तक को पीट डाला।

जो भूल लानतोने ने जान की थी उसके पश्चात्ताप ने तथा उस प्रणयसिन्धु-युगल के मार्मिक और करुण विरह ने उसे मजबूर किया, और वह अपने भाग्य की बड़ी नाव में एलिसिया को लेकर एक बार फिर तरंगाकुल महासागर के वक्ष को चीरता हुआ उस अनाम निर्जन द्वीप की ओर चल दिया।

अस्तगत सूर्य की आरक्त किरणों के साथ वह जोर भी नील-स्वर्ण-प्रकाशित ऊँचे किनारे से आ लगा। लानतोने झटपट ऊपर चढ़ गया। रस्सी डालकर उसने एलिसिया को भी ऊपर खींच लिया। देखा थोड़ी दूर पर जहाँ वह इस बार पहले नाव पर चढ़ा था, जहाँ वह तिमेरिन को मछली पकड़ते छोड़ गया था, वहीं ठीक उसी स्थान पर समुद्र की ओर ताकता हुआ वह अब भी बैठा है। वह झटपट एलिसिया को लेकर उधर दौड़ा। सोचा था चुपचाप जाकर उसे सामने करके वह मित्र को चकित कर देगा। पर वहाँ पहुँचते-पहुँचते वे दोनों खुद ही चकित और मूर्तिवत् खड़े रह गये। आह! तिमेरिन का निष्प्राण शरीर इस दशा में बैठा हुआ अकड़ा था।

पलिया और लालदोने दोनों की आंखों से आंसू ढुलक रहे थे। वह बेचारी सन्ध्या के अन्धकार में उसी तरह खड़ी-खड़ी सोचती रही कि उसका जीवन भी वैसा निष्फल-स्वप्न था।

मन की रानी

पड़ोस के घर में मारपीट के साथ ही चीखने और रोने की आवाज सुनकर रामशरन ने पत्नी से पूछा—सुनयना, पड़ोस कब से आबाद हो गया है?

सुनयना—अरे, आज ही तो आये हैं।

रामशरन—और आते ही

सुनयना—आते ही क्या घर-गृहस्थी में झगड़े लगे ही रहते हैं।

रामशरन—तुम तो खुद कोतवाल से कम नहीं हो।

सुनयना—मैं तो कोतवाल हूं। न होऊं तो थानेदारी तुम्हारी क्या रह जाय।

रामशरन—यह तो मैं मानता हूं।

सुनयना—न मानोगे तो कहां जाओगे?

मार अब तक चल रही थी, बल्कि उग्रतर होती जा रही थी। सुनयना से नहीं रहा गया तो छत पर चढ़कर उधर झांका। अधेड़ सास कमसिन बहू की बेलनों से पूजा कर रही थी!

[चार]

तुम्हें दूसरा घर तलाशना होगा —बहू ने कहा ।

'दूसरा घर ?' रामसरन ने पूछा ।

'हां, आज ही ।

'किसके लिए ?

'उस उसके लिए । बहू ने सुनयना की ओर संकेत कर दिया

'उसके लिए इस घर में जगह नहीं है ?'

'नहीं ?'

आंसू भरे सुनयना ने बहू के पांव पकड़ लिए ।—'मेरे ऊपर दया करो, रानी । मैं अब कहां जाऊंगी ? मेरा दुनिया में कौन है ?'

'तो मैं जाती हूं । बहू भनभनाती हुई बाहर निकल गई ।

सुनयना—अरे नहीं अरे नहीं, 'घर की रानी को जाने की जरूरत नहीं । मैं ही जाती हूं । मैं ही जाऊंगी ।

सुनयना उसके पीछे-पीछे निकल गई ।

खाली घर में थानेदार आंखें फाड़े खड़ा रह गया ।